सुख के अधिकारी ॥ नवरस मुख्य सिंगार बिबिधि भांतिनि करि गायौ । वदन उच्चरित बेर सहस पायनि ह्वै धायौ ॥ अंगीकार की अवधि यह, ज्यों आख्या भ्राता जमल। श्रीमदनमोहन सूरदास की नाम शृंखला जुरी अटल ॥ १२६ ॥
(२१४-१२६=८८)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीमदनमोहन और सूरदास के नाम की शृंखला अचल जुट गई, अर्थात आप थे तो नेत्रयुक्त परंतु नाम सूरदास था सो जहां पर सूरदास नाम है वहां मदनमोहन नाम के साथही है।

आप गान बिद्या और काव्य में अति प्रवीण और शुभ गुणों की राशि ही थे । सब के साथ सुहृदता रखते; सखी के अवतार ही थे । श्रीराधाकृष्ण आपके उपास्य; आप रहस्य सुख के अधिकारी थे। नव रसों में जो मुख्य शृंगार रस, उसको बहुत प्रकार से गान किया । आप की कबिता ऐसी फैलती थी कि जहां मुख से निकली, कि मानों सहस्र चरणों को धारण कर चारों दिशाओं में दौड़ गई । सो यह प्रभु के अंगीकार करने की सीमा है ऐसी प्रभुके और आप के नाम की आख्या हुई कि जैसे जमल भ्राता अश्विनीकुमार सदा इकट्ठे रहते हैं ॥

(दो०) "भली भांति सेए विपिन, तजि बन्धुनि सों हेत।
सूर भजन में एक रस, छाड्यो नाहिन खेत॥"

(६२४)-टीका। कवित्त (८४३—६२४=२१९)

सूरदास नाम नैन कंज अभिराम फूले, झूले रंग पीके नीके जीके और ज्याये हैं। भये सो अमीन यों संडीले के, नवीन रीति प्रीति गुड़ देखि दाम बीस गुने लाये हैं॥ कही पूवा पावै आप मदनगोपाल लाल परे प्रेम ख्याल लादि छकरा पठाये हैं। आये निसि भये स्याम कियौ आज्ञा जोग लैकै अवही लगावौ भोग जागे फिरि पाये हैं॥ ४९८ (६२९–४९८ = १३१)

"अमीन" = امین = रक्षक, थाती रखनेवाला, अधिकारी।

वार्तिक तिलक।

आपका नाम "सूरध्वज" था परन्तु काव्यों में "सूरदास मदनमोहन" लिखा। सो यही विख्यात होगया। आपके दोनों नेत्र फूले कमल के समान थे, प्रभु का प्रेम रंग पीके सुन्दर अनुराग से झूलते; मृतक सरीखे देहाभिमान को तज, स्वस्वरूप से जीवित रहे। और अपने सतसंग से और जीवों को भी सचेत किया। सो दिल्लीपति की ओर से सँडीले के अधिकारी (अमीन) हुए। आप की प्रभु में प्रीति रीति नवीन थी। यहां (सँडीले) का गुड़ बहुत अच्छा देख विचार किया कि इस गुड़ का मालपुआ श्रीमदनगुपाल लाल जी को प्रिय लगेगा, इस प्रेम के कौतुक में पड़े। यद्यपि सँडीले से वृन्दावन तक के भाड़ा का दाम बीसगुना पड़ा तौ भी

गाड़ी में लादके भेज ही दिया। वह गुड़ वृन्दावन में आया, रात्री बहुत बीत गई प्रभुका सयन होगया था; परंतु श्यामसुन्दर की आज्ञा स्वप्न में हुई कि "इसका मालपूआ अभी अभी भोग लगाऔ" सबोंने आज्ञानुसार उसी समय मालपुआ बनाया श्री प्रेम ग्राहक जी ने जाग के भोजन किया॥

(६२५) टीका। कबित्त (८४३–६२५ = २१८)

पद लै बनायौ, भक्तिरूप दरसायौ, दूर संतनि की पान-हींकौ रक्षक कहाऊं मैं। काहू सीखि लियौ साधु लियौ चाहै परचैकों आये द्वार मंदिरके खोलि कही आऊं मैं॥ रह्यौ बैठि जाय जूती हाथ में उठाय लीनी, कीनी पूरी आस मेरी निसि दिन गाऊं मैं। भीतर बुलाये श्री गुसाईं बार दोय चार, सेवा सौंपी सार कह्यौ जन पग ध्याऊं मैं॥ ॥ ४९९ ॥ (६२९–४९९ = १३०)

वार्त्तिक तिलक।

आपने एक पद बनाया, उसमें दुर्लभ अनन्य भक्ति का रूप दरसाया, अंत में यह पद रक्खा, "सूरदास मदन मोहन लालगुण गाऊं। संतन की पानहीं कौ रक्षक कहाऊं"।

इस पद को किसी साधु ने सुन सीख के परीक्षा लेनी चाही; श्री मदनमोहन जी के दरसन को आए, द्वार में "सूरध्वज" जी थे, साधू ने जूती आपके समीप उतार के कहा कि "देखना, मैं आता हूं"। और भीतर जाके बैठ रहे। आप पदत्राणों को हाथ से उठाकर बोले "अब

तक तो मैं अपनी अभिलाषा को दिन रात गान ही मात्र करता था, परंतु आज संत ने मेरी अभिलाषा पूर्ण किया"।

मंदिर के भीतर से श्रीगुसाईं जी ने दो चार बार बुला भेजा; आपने प्रार्थना कर भेजी कि "आज मुझे संत ने सारांश सेवा दी है। सो सेवा संत चरण ध्यान पूर्वक कर रहा हूं; अभी इससे निवृत्त होकर दरशन करूंगा।" यह सुन वह संत और गुसांई जी अति प्रसन्न हो, आकर हृदय में लगाया, और दोनों ने आपकी अति प्रशंसा की।

(६२९) टीका। कवित्त (८४३–६२६ = २१७)

पृथीपति संपति लै साधुनि खवाइ दई, भई नहीं संक यों निसंक रंग पागे हैं। आये सो खजानौ लैन मानौ यह बात अहो पाथर लै भरे आप आधी निसि भागे हैं॥ रुक्का लिखि डारे, "दाम गटके ये संतनि नै, याते हम सटके हैं" चले जब जागे हैं। पहुंचे हजूर, भूप खोलिकै संदूक देखैं, पेखैं आंक कागद मैं रीझ अनुरागे हैं॥ ५००॥ (६२९–५०० = १२९)

"हुजूर" = حضور = सामने, साक्षात। "खजाना" = خزانه = द्रव्यसमूह; द्रव्यागार। "रुक्का" = رقعه = पत्र, लेख, संक्षिप्त पत्र। "सुन्दूक" = صندوق = बाकस = मंजूषा॥

वार्त्तिक तिलक।

यह संडीले की वार्ता है कि पृथ्वीपति (बादशाह) की तेरह लाख द्रव्य(रुपये)साधुवों को खिला दिया; मनमें कुछ भी भय वा शंका न हुई ऐसे अशंक प्रेम रंग से आप पगे

थे। जब दिल्ली से नृपति के भेजे लोग रुपए लेने आये, तब मंजूषाओं में पत्थर भरके ताले जड़ दिये। प्रत्येक में यह पद लिख लिख के डाल दिया, (पद) " तेरह लाख सँडीले उपजे, सब साधुन मिलि गटके। सूरदास मदनमोहन आधी राति को सटके "।

आप आधी रात को (जगके) भागे। जब "संदूकें" दिल्ली में आईं तब बादशाह ने खुलवाके देखा तो पत्थर ही पत्थर भरे थे; वे रुक्के भी निकले। पढ़ेगए तो बादशाह अनुराग से प्रसन्न हुए॥

(६२७) टीका। कवित्त (८४३-६२७=२१६)

लैनकों पठाये, कही निपट रिझाये हमैं, मन मैं न ल्याये, लिखी " वन तन डार्‍यौ है "। 'टोड़र' दिवान कह्यौ "धन कों विरान कियौ, ल्यावौ रे पकरि" मूढ़ फेरिकै संभार्‍यौ है॥ लै गये हजूर, नृप बोल्यौ मोसौं दूर राखौ, " ऐसौ महाक्रूर सौंपि दुष्ट कष्ट धार्‍यौ है। दोहा लिखि दीनौ " अकबर " देखि रीझि लीनौ, " जावौ वाही ठौर तोपै दर्व सब वार्‍यौ है "॥ ५०१ ॥ (६२९-५०१=१२८)

" हुज़ूर " حضور = सामने। " दूर " دور = समीप नहीं, फैलावें।
" विरान " ویران = उजाड़, नष्ट, क्षय। " दीवान " دیوان = प्रधान, अधिकारी।

वार्तिक तिलक।

आप भागके श्रीवृन्दावन में आये; " अकबरशाह " ने आपके लेने के लिये मनुष्य भेजा कि जाकर कहो कि " तुमने रुपये संतों को खिला दिये सो हम बहुत प्रसन्न

हुए, अब तुम हमारे पास आवौ"। आपने उत्तर लिख भेजा कि "मैंने इस शरीर को वृन्दावन में डाल दिया है, अब मुझे वहां मत बुलाइये"।

यह सुन बादशाह के दीवान "तोडरमल" ने यह कह-कर कि "इसने धन को नष्ट किया" लोगों को भेजा कि "जाओ, पकड़ लाओ"। उस दुष्ट ने बादशाह की मति फेर दी। लोग आके आपको पकड़ लेगये। बादशाह ने कहा "मेरे पास मत लाओ" तब दुष्ट टोडर ने "दस-तम" नामक कारागाराध्यक्ष (जेलखाने के अधिपति) को सौंप दिया। उस दुष्ट ने आपको बहुत कष्ट दिया।

तब एक दोहा लिखके आपने अकबर के पास भेजा (दोहा) "यक तम अँधियारो करै, शून्य दई पुनि ताहि। 'दसतम' ते रक्षा करौ, दिनमनि अकबर शाह!"॥ दोहा देख विज्ञ अकबर ने, बहुत प्रसन्न हो, आज्ञा दी कि "तुम पर हमने तेरह लाख द्रव्य निवछावर किया, तुम सुखपूर्वक वृन्दावन चले जावो"॥

(६२८) टीका। कवित्त (८४३–६२८=२१५)

आये बृन्दावन, मन माधुरी मैं भीजि रह्यौ, कह्यौ जोई पद, सुन्यौ रूप रस रास है। जा दिन प्रगट भयौ, गयौ शत जोजन पै, जन पै सुनत भेद वाढ़ी जग प्यास है। "सूर" द्विज द्विज निज महल टहल पाय चहल पहल हिये जुगल प्रकास है। मदनमोहन जू हैं इष्ट इष्ट महा प्रभु अचरिच कहा कृपा दृष्टि अनायास है॥ ५०२॥ (६२९–५०२=१२७)

वार्तिक तिलक।

राजराजेश्वर अकबर की आज्ञा पा, श्रीवृन्दावन में आ, श्रीयुगल माधुरी में आपने मनको भिंगादिया; फिर जो पद आपने बनाये सो सुनने में रूप रस का रास ही जान पड़ता था; जिस दिन पद प्रगट होता उसीदिन चार सौ कोस पहुँच जाता था। और उस पद का अर्थ काव्य रस भेद सुनते ही जगत को प्यास बढ़ती थी।

सूरध्वज द्विज, अपने प्रभुके महल की टहल पाके अति आनंदित हुए। युगल चन्दका प्रकाश हृदयमें छारहा, सो ऐसा होना योग्य ही है, क्योंकि आप के श्रीमदनमोहन जी और महा प्रभु जी इष्ट थे, दोनों की कृपा दृष्टि से युगल प्रकाश हृदय में होना आश्चर्य्य नहीं॥

(२००) श्रीकात्यायनी जी।

(६२९) मूल। छप्पै (८४३-६२९=२१४)

कात्यायनी के प्रेम की, बात जात कापै कही॥ मारग जात अकेल, गान रसना जु उचारै। ताल मृदंगी वृक्ष, रीझि अंबर तहँ डारै॥ गोप नारि अनुसारि गिरा गदगद आवेशी। जग प्रपंच ते दूरि अजा परसैं नहि लेसी॥ भगवान रीति अनुराग की संत साखि मेली सही। कात्यायनी के प्रेम की, बात जात कापै कही॥ १२७॥ (२१४-१२७=८७)

वार्तिक तिलक।

श्री "कात्यायिनी" जी के प्रेम की बात किस्से कही जासक्ती है। आपकी यह दशा थी कि अकेली मार्ग में चलती हुईं सरस रसना से प्रभु सुयश गाती ऐसे प्रेमावेश में छक जाती थी कि जो वृक्षों में पवन लगने से शब्द होता था उसको जानतीं कि ये मेरे गान के साथ मृदंगादि बाजा बजाते हैं; इस्से उनके ऊपर रीझके अपने वस्त्र भूषण दे डाला करती थीं। आपका श्रीकृष्णचन्द्र जी में गोपवधू जनों के समान ही प्रेम था। प्रभु के गुणानुवाद करने में अनुराग के आवेश से वाणी गद्गद हो जाती थी। आपके चित्त में जगत प्रपंच का भान ही नहीं; और माया का स्पर्श लेश भी नहीं। श्री "कात्यायिनी" जी की भगवत अनुराग की रीति देख संत जनों ने यही ठीक किया कि बस अनुराग इसीका नाम है॥

श्रीमुरारिदास जी।

(६३०) मूल। छप्पै (८४३-६३० = २१३)

कृष्ण बिरह कुंती सरीर, त्यों "मुरारि" तन त्यागियौ॥ बिदित "बिलौंदा" गांव देस मुरधर सब जानै। महामहोच्छो मध्य संत परिषद परवानै॥ पगनि घूंघुरू बांधि रामकौ चरित दिखायौ॥ देसी सारँग पानि हंस ता संग पठायौ॥

उपमा और न जगत में, "पृथा" बिना नाहिन वियौ॥ कृष्ण बिरह कुंती शरीर, त्यौं मुरारि तन त्यागियौ॥ १२८॥ (२१४–१२८ = ८६)

वार्तिक तिलक।

श्रीकृष्णचन्द्र जी का विरह सुनते ही जिस प्रकार कुंती जी ने शरीर तज दिया उसी प्रकार श्रीसीतारामचन्द्र जी के विरह का पद गान ध्यान करते ही, श्री "मुरारिदास" जी ने भी शरीर को त्याग दिया। आप मारवाड़ देश में विख्यात विलौंदा (वलवंडा) गांव में विराजते थे; और प्रति सम्बत् में महामहोत्सव करते थे।

एक समय के महोत्सव में भगवत पारषदों के समान अनेक संत विराजमान थे; वहां आपने अपने चरणों में नूपुर बाँधकर श्रीराम जी का चरित्र ऐसा गान किया कि उस सप्रेम शब्द से सब को प्रभुका रूप और चरित्र नेत्रों में झलक पड़ा; अंत में आपने देशीय विधान से ऐसा आलाप किया कि श्रीरघुनन्दन सार्ङ्गपाणि के वनगवन रूप में चित्त प्रत्यक्ष पहुँच गया। प्रभुके साथ ही हंस (जीवात्मा) को भी भेज दिया। शरीर ऐसाही रह गया। आपके तन त्यागने की उपमा श्रीकुंती जी को छोड़ और है ही नहीं॥

(६३१) टीका। कवित्त (८४३–६३१ = २१२)

श्रीमुरारिदास रहे राजगुरु, भक्त-दास, आवत स्नान किये कान धुनि कीजियै। जाति कौ चमार करै सेवा सो उचारि कहै "प्रभु चरणामृत कौ पात्र जोई लीजियै"॥

गये घरमांझ वाके, देखि डर कांपि उठ्यौ, "ल्यावौ देवौ हमैं, अहो पान करि जीजियै"। कही "मैं तो न्यून तुच्छ;" बोले "हमहू तें स्वच्छ जानै कोऊ नाहिं तुम्है मेरी मति भीजियै"॥ ५०३ ॥ (६२९-५०३ = १२६)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीमुरारिदास जी विलौंदा नगर के राजा के गुरुदेव, और भगवत भक्तों के पूरे दास, थे। एक दिन स्नान किये चले आते थे एक ध्वनि आपके कान में पड़ी। एक जाति का चर्मकार अपने गृहमें भगवत-पूजा कर नित्य पुकारता था कि "जो प्रभुके चरणामृत का पात्र हो, सो लेवै।" सोई ध्वनि सुन उसके गृह में आप गये; वह देखते ही भय से कांपने लगा; आप बोले "लाओ, मुझको दो, पान कर जीवन को सुफल करूं"।

वह बोला "मैं अति तुच्छ, जाति का चमार हूं।" आप कहने लगे कि "तुम तो भक्तियुक्त हो इससे मुझसे भी पवित्र हो; तुम को कोई जानता नहीं, तुम्हारा प्रेम देख मेरी मति सरस होगई है"॥

(६३२) टीका। कवित्त (८४३-६३२ = २११)

बहैं दृग नीर, कहै मेरे बड़ी पीर भई; तुम मति धीर; नहीं मेरी जोग्यताई है। लियौ ई निपट हठ, बड़े पटु साधुता मैं, स्यामै प्यारी भक्ति, जाति पांति लै बहाई है॥ फैलि गई गाँव, वाकौ नांव लै चवाव करैं भरैं नृप कान सुनि वाहू न सुहाई है। आयौ प्रभु देखिबे कौं, गयौ वह रंग

उड़ि, जान्यौ सो प्रसंग, सुन्यौ वहै बात छाई है ॥ ५०४ ॥
(६२९–५०४ = १२५)

वार्तिक तिलक।

उसके नेत्रों में जल बहने लगा; हाथ जोड़ बोला कि "मैं जो पुकार के चरणामृत लेने को कहा सो बड़ा दुःख हुआ, आप महात्मा हैं मुझे आप को चरणामृत देने की योग्यता नहीं है।" निदान आपने अत्यन्त हठ करके ले ही तो लिया क्योंकि साधुता में अति प्रवीण थे; विचार किया कि श्रीराम जी को भक्ति ही प्रिय है; इस्से जाति पांति को प्रेम के प्रवाह में बहा दिया।

यह बात सब नगर में फैल गई, सब विमुख लोग उसके जाति का नाम लेकर राजा के पास आप की निन्दा करने लगे। सुनके वह बात राजा को भी नहीं अच्छी लगी; हृदय में अभाव आगया। एक दिवस श्रीमुरारिदासजी राजा के देखने को गये; देखैं तो राजा का पहिला प्रेमरंग सब चला गया। आपने जाना कि वही बात है। फिर स्थान में आके और लोगों से भी सुना कि आप के चरणामृत लेने की निन्दा सब नगर में तथा राजा के हृदय में छा रही है॥

(६३३) टीका। कवित्त (८४३–६३३ = २१०)

गए सब त्यागि, प्रभु सेवा ही सों राग जिन्हें, नृप दुख पागि, गयौ, सुनी यह बात है। होत हो समाज, सदा भूपके बरष मांझ, दरस न काहू होत, मान्यौ उतपात है॥

चलेई लिवायवे कों जहां श्रीमुरारिदास, करी साष्टांग रास नन अश्रुपात हैं। मुखहूँ न देखे वाको, विमुख कै लेखे, अहो पेखे लोग कहैं यह गुरु शिष्य ख्यात है ॥ ५०५ ॥
(६२९-५०५ = १२४)

वार्तिक तिलक ।

आप विरक्त तो थे ही, श्रीसीताराम जी की सेवा भजन छोड़ और किसी वस्तु में अनुराग न था; इस्से सब छोड़ छाड़ किसी और स्थल में जा विराजे । आपका चले जाना सुन राजा दुखित हुआ । राजा के इहां प्रति वर्ष संतन का समाज उत्सव होता था सो आप के चले जाने से किसी संत का दरसन भी नहीं हुआ । तब राजा बड़ा उत्पात मान जहां श्रीमुरारिदास जी विराजे थे वहां आपको लिवा लानेके लिये गया; और साष्टांग कर, हाथ जोड़ खड़ा हुआ। राजा के नेत्रोंसे प्रेमाश्रु की धारा बहने लगी । आपने भक्ति विमुख जान उसका मुख भी न देखा; यह दोनों की दशा देख अच्छे लोग कहने लगे कि गुरु और शिष्य ऐसे ही होना चाहिये ॥

दोहा—" गुरु निर्मोही चाहिये, शिष्य न छाड़ै प्रीति ।
स्वारथ छाड़ै, हरि मिलै, इहै भजन की रीति " ॥१॥

(६३४) टीका । कवित्त (८४३-६३४ = २०९)

ठाढ़ौ हाथ जोरि, मति दीनता मै बोरि, " कीजै दंड मोपै कोरि यों निहारि मुख भाँखियै। घटती न मेरी, आप कृपा ही की घटती है; बढ़ती सी करी तातें न्यूनताई

राखियै ॥ सुनिकै प्रसन्न भये कहे लै प्रसंग नये, बालमीक आदि दै दै नाना बिधि साखियै। आये निज गाम, नाम सुनि सब साधु धाये भयौई समाज वैसौ देखि अभिलाखियै ॥ ५०६ ॥ (६२९-५०६ = १२३)

वार्तिक तिलक।

राजा अपनी मति दीनताई में भिगा, हाथ जोड़, खड़ा हुआ, और प्रार्थना करने लगा, कि " हे स्वामी ! मुझपर कोटानि दंड करके शुद्ध कीजिये और जो मेरे मन में मलीनता आई सो मेरी घटती नहीं किन्तु आप की कृपा ही की घटती थी अब फिर आप ने कुछ अधिक कृपा किया इसी से नम्रता पूर्वक विनय कर रहा हूं।" विनय सुन आप प्रसन्न हुये और राजा को वाल्मीकि आदि के प्रसंग उपदेश सुनाये कि देखो श्वपच बाल्मीकि को श्रीकृष्णचन्द्र जी ने किस प्रकार का सत्कार किया; तथा श्रीशवरी निषाद जी को श्रीरघुनन्दन जी ने कैसी बड़ाई दिलाई; और गज गणिकादिक भगवद्भक्ति से कैसे पवित्र हुये; इत्यादि। सुन राजा प्रेम प्रबोध युक्त हुआ; फिर आप अपने पूर्वस्थान में आये; आप का आगमन सुन सब संत मिलने को दौड़े। फिर बड़ा उत्तम समाज हुआ राजा ने देखकर अपना अभिलाष पूर्ण माना ॥

(६३५) टीका। कवित्त (८४३-६३५ = २०८)

आए बहु गुनीजन नृत्य गान छाई धुनि ऐपै संत सभा मन स्वामी गुण देखियै। जानिकै प्रवीन उठे, नूपुर नवीन

बांधि सप्तस्वर, तीन ग्राम, लीन भये पेखिये ॥ गायौ रघु-नाथ जू कौ वनकौ गमन समै तासँग गँमन प्रान चित्र सम लेखियै। भयौ दुख रासि, "कहां पैयै श्रीमुरारिदास;" गए राम पास, एतौ हिये अवरेखियै ॥५०७॥(६२९–५०७ = १२२)

वार्तिक तिलक ।

उस महोत्सव समाज में बहुत से उत्तम गुणीजन आये, नाच और श्रीरामयश गान की मंगल धुनि छागई । परन्तु सभा के अनुरागी संतों के मन में अभिलाषा उत्पन्न हुई कि श्रीस्वामी जी के मुखसे गान और नृत्य गुण देखे तो भला।

ऐसा जान परम प्रवीण श्रीमुरारिदास जी ने उठके नवीन नूपुर चरणों में बांध, सप्तस्वर तीन ग्राम में लीन हो आलाप कर, श्रीरघुनाथ जी के वन गवन का पद गान किया । उसी समय श्रीराम रूप में तदाकार हो आप के प्राणों ने भी प्रभुके साथही गवन किया । शरीर चित्र के समान रह गया ।

सब को बड़ा ही दुख हुआ; कहने लगे "हाय अब श्री मुरारिदास जी को कहां पावैं" आप तो श्रीराम जी के समीप प्राप्तहुये। सब इस सत्य प्रेमकी जैजैकार करने लगे।

(२०२) गोस्वामी श्री १०८ तुलसीदास जी ।

	कलि	सम्वत्	सन ई०	शाके
जन्म	४६३३	१५८९	१५३२	१४५४
परलोक	४७२४	१६८०	१६२३	१५४५

(६३६) मूल छप्पै (८४२-६३६=२०६)

कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीक तुलसी भयौ ॥ त्रेता काव्य निबंध करिव सतकोटि रमायन। इकअक्षर उद्धरैं ब्रह्महत्यादि परायन॥ अब भक्तनि सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी। रामचरन रस मत्त रटत अह निसि व्रतधारी॥ संसार अपार के पार को सुगम रूप नवका लयौ। कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीक तुलसी भयौ ॥ १२१ ॥ (२१४-१२१=८५)

वार्तिक तिलक।

कलियुग में कुटिल जीवों को भवसिंधु से निस्तार करने के हेतु, श्रीवाल्मीकि मुनिवर श्रीतुलसीदास रूप से अवतीर्ण हुए; त्रेतायुग में शतकोटि श्रीरामायण काव्यनिबंध आपने किये थे, कि जिन श्रीरामायणों के एक एक अक्षर ऐसे पुनीत प्रभाव वाले हैं कि उनको उच्चारण करने से ब्रह्महत्यादि, अर्थात् ब्रह्महत्या गोहत्या बालहत्या स्त्रीहत्या मद्यपान इन महापापों में परायण पुरुष भी उद्धार को प्राप्त हो जाते हैं; अब इस युग में श्रीसीताराम भक्तजनों को सुख देने के अर्थ फिर श्रीरामायणी ललित लीला भाषा काव्यनिबंध विस्तार किया, सो उसके भी एक एक अक्षर महापापों से उद्धार करनेवाले और भक्तों को ब्रह्मानन्द देनेवाले हैं। आप स्वयं कैसे हैं कि श्रीसीताराम चरणकमलों

के प्रेमरस से मत्त मधुव्रत (भँवर) की नाईं अनन्य व्रत धारण किए दिन रात्रि श्रीरामनाम यश रटते (गुंजार करते) हैं। अपार संसारसागर से पार होने तथा कुटिल जीवों को पार करने के अर्थ सुगम रूप नौका, अर्थात् परब्रह्म द्विभुज सीतापति शार्ङ्गधर साकेतबिहारी श्याम सुन्दर श्रीरामरूप, तथा तन्नाम ("घोर भव नीरनिधि नाम निज नावरे"), और तद्गुण लीला कथा ("भव-सागर चह पार जो पावा। राम कथा ताकहँ दृढ़ नावा") सुगम रूपी नौका लिया, ऐसे कलिकलुख विध्वंशनाचार्य्य श्री १०८ तुलसीदास जी श्रीवाल्मीकि मुनि के अवतार हुए॥

टिप्पणी (१) प्रमाण भविष्यपुराणे॥ "वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ-देवि! भविष्यति। रामचन्द्र कथां साध्वीं भाषारूपां करिष्यति॥ १॥

(२) प्रमाण श्रीरामरक्षास्तोत्रे॥ "चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। एकैकमक्षरं पुंसां महापातक नाशनम्"॥ १॥

कोई २ शंका करते हैं कि "श्रीवाल्मीकि ने मुक्त जीव होके क्यों जन्म लिया?" उसका उत्तर, ईश्वर को तथा साकार मुक्त जीवों को ऐसी सामर्थ्य होती है कि पूर्वरूप से ज्यों के त्यों बने भी रहैं और अपने सत्य संकल्प से रूपान्तर तथा अवतार भी धारण करलेवैं, देखिए भगवान् अपने परमधाम में विराजमान भी रहते हैं और मत्स्यादि अवतार भी धारण कर लेते हैं; ऐसे ही श्रीवाल्मीकि जी को भी जानिए॥ स्कन्दपुराण में लिखा है (श्लोक) "वाल्मीकिरभवद्ब्रह्मा वाणी वाक्तस्यरूपिणी"॥ ब्रह्मा जी के अवतार वाल्मीकि हुए और सरस्वती जी आप की वाक्य हुईं देखिए ब्रह्मा जी भी बने थे और वाल्मीकि जी भी हुए ऐसहीं जानिए॥ श्रीगोस्वामी जी ने भी अपना अवतार सूचित किया है (पद) "जन्म जन्म जानकीनाथ के गुन गन तुलसिदास गाए"

श्रीतुलसीदास जी के गान किए हुए प्रसिद्ध १२ बारह ग्रंथ प्रमाण हैं

(कवित्त) " रामलला नहछू, त्यों विरागसंदीपिनी हू, बरवै बनाई बिरमाई मति साँई की। पारवती, जानकी के मंगल ललित गाय, रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु-नाई की॥ दोहा, औ कवित्त, गीतबंध, कृष्ण कथा कही, रामायनै, बिनै माँह बात सब ठाई की। जग में सोहानी, जगदीश हू के मनमानी, संत सुखदानी, बानी तुलसी गोसाई की॥ १॥" लोगोंने छोटे बड़े सोलह ग्रंथ भी माने हैं, परन्तु उन ग्रंथों में श्रीगोस्वामी जी की वर्ण अर्थ शैली नहीं पाई जाती।

जीवान्मन्दमतीन्सुभाग्य रहितान्ज्ञात्वाकलेर्दोषत-
स्तत्कल्याण परायणः परकविःश्रीमन्महर्षिस्स्वयम्॥
वाल्मीकिः कृपयासुहृत्सुतुलसीदासेति नाम्नाकला-
वाविर्भूय चकार रामचरितम्भाषाप्रबन्धेनवै॥ १॥

Dr. Grierson on Tulasi Dasa:-

"Tulasi Dasa is surely deserving of more notice than is usually bestowed upon him in histories of the development of the religious idea in India.

"I give much less than the usual estimate when I say that fully ninety millions of people base their theories of moral and religious conduct upon his (Tulasi Das') writings. If we take the influence exercised by him at the present time as our test, he is one of the three or four great writers of Asia.

"Over the whole of the Gangetic valley his great work (the Ramayana) is better known than the Bible is in England.

"There is....., when occasion requires it, a sententious, aphoristic method of dealing with narrative, which teems with similes drawn, not from the traditions of the schools, but from nature herself, and better than Kali Dasa at his best." (1903)

(चौ०) बन्दौं तुलसिदास गोस्वामी।
जासु सुमति सबके उर जामी॥

(६३७) टीका। कवित्त (८४३−६३७ = २०६)

तिया सौं सनेह, बिनु पूछे पिता गेह गई, भूली सुधि

देह, भजे वाही ठौर आए हैं । वधू अति लाज भई, रिसि सों निकसि गई, प्रीति राम नई, तन हाड़ चाम छाए हैं ॥ सुनी जब बात, मानौ होइगयौ प्रात, वह पाछे पछितात, तजि, "काशी पुरी" धाए हैं । कियौ तहां वास, प्रभु सेवा लै प्रकास कीनौ, लीनौ दृढ भाव, नैन रूप के तिसाए हैं ॥ ५०८ ॥ (६२९–५०८ = १२१)

वार्त्तिक तिलक ।

आपका ब्राह्मण कुल में सम्वत १५८९ में, जन्म हुआ। यज्ञोपवीत होने पर विद्याध्येन किया, विवाह गौना भी हुआ । स्त्री से स्नेह था, उसके मायके (नैहर) से पिता भ्राता कोई लिवाने आया, तब वह आपका अपने में स्नेह जान, विना पूछे ही, पिता के गृह चली गई । पीछे आप आके उसका जाना सुन, स्नेह से देह दशा भूल, दौड़े हुये उसी के समीप जा पहुँचे । देख के स्त्री को अति लज्जा आई ।

कुछ क्रोधयुक्त स्त्री के मुख से यही वाणी निकलपड़ी कि "आप श्रीराम जी में इस प्रकार प्रीति नहीं करते, कि जो नित्य नवीन दोनों लोक में सुख सुयश देनेवाली है । मेरे शरीर में ऐसी प्रीति की सो इस में मांस रुधिर हाड़ चाम छोड़ क्या और कुछ भी है ?"

(दो०) काम वाम की प्रीत जग, नित नित होत पुरान ।
राम प्रीत नित ही नई, वेद पुरान प्रमान ॥ १ ॥
लाज न लागत आप को, दौरे आयेहु साथ ।
धिक धिक ऐसी प्रीत को, कहा कहौं मैं ? नाथ ! ॥ २ ॥

अस्थि चरम मय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौं श्रीराम महँ, होति, न तौ भव भीति ॥ १ ॥

स्त्री के मुख से श्रीरामप्रेरित ऐसे वचन सुनते ही आप के हृदय में मानो ज्ञान वैराग्य रूपी सूर्य उदय हो गये; प्रथम की दशा रात्रि के समान चली गई। आप उसी क्षण उसी ठिकाने से चलदिये; स्त्री पीछे पश्चात्ताप करके कुछ प्रार्थना करने लगी; परन्तु आपने उसकी तरफ़ देखा तक नहीं।

यहां सज्जनोंने इतनी युक्त वार्ता और भी लिखी है कि श्रीतुलसीदास जी कई कोश चले आये; एक ठिकाने श्रीगंगा जी में जल पान करके सो रहे, तो स्वप्न में श्रीशिव जी ने श्रीराम षड़क्षर मंत्रराज बताया, और कहा कि "यही मंत्र और श्रीराम नाम तुम जपो, तुम को श्रीराम जी दरसन देंगे।" आप जागे, उसी क्षण से श्रीराम नाम में अतिशय तत्पर हुये इसी हेतु से श्रीशिव जी को गुरुदेव करि के माने हैं (हित उपदेशक महेश मानौं गुरुकै) "बाहुक" में ॥

तदनन्तर श्री "बाराहक्षेत्र" में आकर श्रीरामानन्दीय महात्मा ❋ श्रीनरहरिदास जी से श्रीराम मंत्रादिक पंच संस्कार ग्रहण कर श्रीरामायण जी सुना। फिर आज्ञा लेकर वहां से श्रीकाशी जी आये; वहां निवास कर श्री सीताराम प्रभु जी की मानसी तथा प्रत्यक्ष सेवा में तत्पर होकर दृढ़ भजन भावना में आरूढ़ हुये †।

आपके नेत्र श्रीराम दरसन रूप स्वाति विन्दु के लिये चातक के समान प्यासे रहते थे।

अनन्त श्रीगोस्वामि तुलसीदास जी के जीवन चरित्र बहुत सज्जनों ने कई प्रकार से वर्णन किये हैं किसी २ ने आपको कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा है परन्तु

विज्ञोंने सरयूपारी ब्राह्मण लिखा है। उसमें कोई शुकुल (" सुकुल जनम " कवितावली) गर्ग गोत्री कोई पराशर गोत्री द्विवेदी पत्यौजा के लिखते हैं। " तुलसी पराशर गोत दुबे पतिऔजा के " ऐसा श्रीकाष्ठजिह्वा स्वामी जी ने लिखा है। अस्तु, ब्राह्मण वंश ही को आपने पवित्र किया यह निश्चय हुआ।

जन्मस्थान भी लोक कई ठिकाने लिखते हैं; बांदा जिले में यमुनातीर " राजापुर " को बहुत लोग कहते हैं परन्तु राजापुर आप का जन्मस्थान नहीं है। श्रीगोस्वामी जी का जन्मस्थान श्रीगंगा बाराहक्षेत्र (सोरौं) के प्रान्त अन्तर्वेद में " तरी " नामक ग्राम में वा " तारी " था। आपने " राजापुर " में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया है, इसी से वहां श्रीगोस्वामी जी के विराजमान की हुई संकष्टमोचन श्रीहनुमान जी की मूर्ति हैं। और श्री-रामायण अयोध्याकांड भी है। यह वार्ता वहां जाके भली प्रकार निश्चय की गई है। आपके जन्मका सम्वत् १५८९ का निश्चय होता है। पिता का नाम श्री-आत्माराम जी और माता का श्रीहुलसी जी महानुभावों ने लिखा है॥ गोशाईं जी ने अपना नाम " रामबोला " भी कवित्तरामायण में लिखा है " रामबोला नाम हौ गुलाम रामसाहि कौ " ॥

---

* श्रीनरहरिदास जी की गुरुपरम्परा महात्माओं ने यों कही है:—

(१) श्री १०८ रामानन्द स्वामी (२) श्रीअनन्तानन्द जी (३) श्रीनरहरिदास (४) इन्हीं श्रीनरहरिदास जी के शिष्य श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी हैं। पाठक यह जानते ही हैं कि–(१) श्री १०८ रामानन्द स्वामी (२) श्रीअनन्तानन्द (३) श्रीकृष्णदास पैहारी जी (४) श्रीअग्रस्वामी (५) गुशांई श्रीनाभा जी महाराज, और, यह भी कि दोनों (गुशांई श्रीनाभास्वामी तथा गुशांई श्रीतुलसीदास जी) एक ही समय में थे, और परस्पर समागम था॥

† (दो०) " पढ़यौं गरू तें बीच शरँ, सन्त बीच मनँ जान।
गौरी शिव हनुमत कृपा, तब मैं रची 'चिरान'॥१॥ "

(६३८) टीका। कवित्त (८४३–६३८ = २०५)

सौच जल सेस पाय, भूतहू विशेस कोऊ, बोल्यौ सुख मानि, हनुमान जू बताए हैं। " रामायन " कथा, सो

रसायन है काननि को, आवत प्रथम, पाछे जात, घृना छाए हैं ॥ जाय पहिचानि, संग चले उर आनि, आए बन मधि, जानि, धाय, पायँ लपटाये हैं। करैं तिरस्कार, कही "सकोगे न टारि, मैं तो जाने रससार" रूप धर्‌यो जैसे गाए हैं ॥ ५०९ (६२९—५०९ = १२०)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीकाशी जी में (❋ १) शौच को आप "असी" नदी के पार जाते थे । शौचशेष जल स्वाभाविक एक कंटकी बेरके वृक्ष में नित्य डाल दिया करते थे ॥ वहां अन्यत्र का एक प्रेत आकर रहता; और वह वहां पानी पीता था, क्योंकि प्रेतों को अशुद्ध ही जल पीने का अधिकार है ।

एक दिन वह प्रेत प्रगट हो सुखपूर्वक आप से बोला कि "मुझ प्रेत को आपने पानी देकर प्रसन्न किया । कुछ मांगिये ।" आपने कहा "मुझे श्रीरामचन्द्र जी का दरसन करादो, और कुछ नहीं चाहना है ।" उस्ने कहा "यह शक्ति तो मुझे नहीं है, परन्तु उपाय बतलाताहूं । अमुक ठिकाने श्रीरामायण कथा जो उनके कानों की रसायन है सो सुनने श्रीहनुमान जी छुपके आते हैं, अति दीन मलीन रूप धारण कर, सबसे प्रथम आते और सबसे पीछे जाते हैं, वे आपको दरसन करा देंगे"।

दोहा—रामकथा जहँ कोउ कहै, तहँ तहँ पवनकुमार ।
सिर कर अँजुलि धरि सुनत, बहत नयन जलधार ॥ १ ॥

श्रीगोस्वामीजी उस कथामें जाकर श्रीकपिराज (हनुमत)

जी को पहचान बैठे रहे। चले, तब आप भी पीछे पीछे चले। जब वन में निकल आये तब श्रीगोस्वामी जी दौड़ के चरण पकड़ लपट गये। श्रीहनुमान जी कहने लगे छोड़ो २ तुम साधु होकर मुझे क्यों छूते हो ?" आप बोले "मैंने आप को श्रीराम-दास्य रस-सारांस-मूर्त्ति जान-लिया; अब चरण नहीं छोड़ूंगा"। श्रीहनुमान जी ने तब प्रसन्न होकर जैसा श्रीरामायण में आपका रूप कहागया है सो उस रूपसे दरसन दे मस्तक पर हाथ रक्खा।

(१) और कोई २ कहते हैं कि श्रीगोस्वामी जी नित्य गंगा पार ही शौच जाते थे वहां ही प्रेत मिला।

(६२९) टीका। कवित्त (८४३-६२९ = २०४)

"मांगि लीजै वर" कही "दीजै राम भूप रूप, अति ही अनूप, नित नैन अभिलाखियै"। कियौ लै संकेत, वाही दिन ही सो लाग्यो हेत, आई सोई समै चेत" कब छबि चाखियै" ॥ आए रघुनाथ, साथ लछिमन, चढ़े घोरे, पट रंग बोरे हरे, कैसे मन राखियै। पाछे हनुमान आय बोले देखे प्रान प्यारे ?" "नेकु न निहारे मैं तौ भलें ! फेरि भाखियै" ॥ ५१० ॥ (६२९-५१० = ११९)

वार्तिक तिलक।

श्रीमारुतनन्दन जी ने आपसे कहा "वरदान मांगलो" श्रीगोस्वामी जीने कहा कि "अति अनूप श्रीराम भूप रूप के दरसन को मेरे नयन नित्य अति अभिलाषायुक्त हैं सो दीजिये"।

श्रीकपीश्वर जी ने संकेत किया कि "चलो चित्रकूट जी में दरसन होगा"। श्रीगोस्वामी जी उसी दिन दरसनाभिलाष प्रेम उत्कंठा में भरे चले। श्रीचित्रकूटमें आकर जहां श्रीहनुमान जी ने बताया था वहां बैठके यह विचार करने लगे कि "वह शोभामृत मेरे नेत्र कब चखेंगे?" इतनेही में राजकुमार वेष से श्रीरघुनन्दन जी और लाल लाड़ले श्रीलषन जी घोड़ोंपर चढ़े मृगयानुकूल हरित वस्त्र धारण किये एक मृगा के पीछे घोड़ा दौड़ाये आकर निकल गये। श्रीगोस्वामी जी ने देखा तो, परन्तु मनमें श्रीराम लक्ष्मण जी का निश्चय न किया।

पीछे श्रीहनुमान जी ने आकर पूछा "तुमने प्राण प्यारे प्रभूको देखा?"। आप कहने लगे कि "मैंने भले प्रकार निश्चय करके तो नहीं देखा" तब श्रीपवनतनय जी ने कहा अब हम भली भांतिसे फिर दरसन करावेंगे।" सो फिर मन्दाकिनी के तीर में श्रीसीताराम जी सिंहासन पर विराजमान श्रीभरत लालजी छत्र लिये श्रीलक्ष्मण शत्रुघ्न दहिने बायें चँवर चलाते थे इस राजमाधुरीका दरसन श्रीहनुमान जी कृपालु ने कराके श्रीतुलसी दास जी को कृत कृत्य किया; फिर श्रीगोस्वामी जी काशी जी को चले आ, उसी दिव्यरूप की माधुरी का ध्यान करते थे।

(६४०) टीका। कवित्त (८४३—६४०=२०३)

हत्या करि बिप्र एक, तीरथ करत आयौ, कहै मुख "राम, भिक्षा डारिये हत्यारे कौं।" सुनि अभिराम नाम

धाम मे बुलाय लियो दियो लै प्रसाद कियो सुद्ध गायो प्यारे कौं ॥ भई द्विज सभा कहि बोलि कै पठाये आप "कैसे गयौ पाप, संग लैके जेंये, न्यारे कौं।" "पोथी तुम बाचौं, हिये सार नहीं सांचौ अजू ताते मत कांचौ, दूर करै न अंध्यारे कौं" ॥ ५११ ॥ (६२९-५११=११८)

वार्तिक तिलक ।

एक समय काशी जी में एक ब्राह्मण हत्या करके अनेक तीर्थ करते आया और बड़े दीन स्वरसे पुकार के कहता था "राम, राम, हत्यारे को भिक्षा डालदीजिये"। श्रीगोस्वामी जी ने सुना कि "प्रथम अति अभिराम शत कोटि तीर्थ सम पावन नाम कह फिर अपने को हत्यारा भी कहता है यह कौन है?" आपने निकल के पूछा। उसने अपना वृत्तान्त कहा। आप बोले कि "जो तुम इस प्रकार ग्लानि दीनता पूर्वक मेरे प्राणप्रिय परब्रह्म श्रीराम जी का नाम उच्चारण करते हौ, तो शुद्ध होगये, आवो बैठो"। फिर उसको पंक्ति में बैठाके श्रीराम प्रसाद पवाये।

इस वार्ता को काशी के सब ब्राह्मणों पंडितों ने सुन कर सभा की और श्रीगोस्वामी जी को बुलाकर कहने

(क०) "हरी भरी बाटिका सुधर्म की, विशाल अति, जाके देखे छूटि जात सबै दुख दंद है। व्यास, शुक, नारद, मुनीश, शेष, शारदादि, पाराशर, बालमीक, मालिन को वृन्द है॥ चार सम्प्रदाय की बनाई चार रौशैं, 'रंग,' शास्त्र, वेद तरु पाँति, राजत स्वछन्द है। चञ्चरीक तुलसी, सप्रेम ताके मध्य पैठि, अजब निकास्यो रामयश मकरन्द है॥ १ ॥"

(डाक्टर रामलालशरण "रंग")

लगे कि "बिना प्रायश्चित्त किये इसका पाप कैसे छूटगया? पंक्ति से न्यारे किये हुये को आपने अपने साथ में लेकर भोजन किया, यह अयोग्य है"। आपने उत्तर दिया कि "आप लोग शास्त्रों के पुस्तक पढ़ते तो हैं परन्तु उनके सारार्थ में दृढ़ता सचाई नहीं करते; इसीसे आपलोगों का मत कच्चा है, हृदय का अज्ञान अन्धकार नहीं जाता; देखिये तो श्रीरामतापनी आदिक श्रुतियों तथा हारितादि स्मृतियों में श्रीराम नाम की कैसी महिमा लिखी है।"

(प्रमाण श्लोक) ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगोपि पुरुषः स्तेयी सुरापोऽपित्रा मातृभ्रातृविहिंसकोपि शततंभोगैकवद्धस्पृहः नित्यंराममिमंजपन् रघुपतिं भक्त्या हृदिस्थं तथा ध्यायन्मुक्तिमुपैतिकिं पुनरसौस्वाचारयुक्तोनरः ॥ १ ॥ स्वप्ने तथा संभ्रमतः प्रमादाद्विजृंभणात्संस्खलनाद्यभावात्।रामेतिनामस्मरतस्सकृद्वैनश्यत्यसंख्यद्विजधेनुहत्या ॥ २ ॥ रकारोच्चारणेनैववाहिर्निर्यातिपातकम् पुनः प्रवेशकालेच मकारस्तुकपाटवत् ॥३॥ (श्रुतिः) यएतत्तारकं ब्राह्मणोनित्यमधीते ससर्वंपाप्मानं तरति समृत्युंतरति सब्रह्महत्यांतरति सभ्रूणहत्यांतरति सवीरहत्यांतरति ससर्वहत्यांतरति ससंसारंतरति ससर्वंतरति सोऽविमुक्तमाश्रितोभवति समहान्भवतिसोऽमृतत्वंच गच्छति ॥ इति श्रुतिः रामतापिनीयोपनिषदि ॥ श्रीरामेतिपरंजाप्यं तारकंब्रह्म संज्ञकम् । ब्रह्महत्यादिपापघ्नमितिवेदविदोविदुः ॥१॥ इति सनत्कुमार संहितायाम् ।

(६४१) टीका । कवित्त (८४३–६४१ = २०२)

देखी पोथी बांच, नाम महिमाहूं कही सांच, "ऐपै हत्या करै कैसें तरै कहि दीजियै ?" "आवै जौ प्रतीति कहौ", कहीं याके हाथ जेंवै शिवजूकौ बैल तब पंगति में लीजियै"॥ थार मै प्रसाद दियौ चले जहां पन कियौ, बोले "आप नामकै प्रताप मति भीजियै। जैसी तुम जानौ तैसी कैसेकै बखानौ अहो" सुनिकै प्रसन्न पायौ, "जैजै" धुनि

रीझिये ॥ ५१२ ॥ (६२९–५१२ = ११७)

वार्तिक तिलक।

आपके कहने पर पंडितों ने उन पुस्तकों को बांच देखे तो ब्रह्महत्यादि मोचनी श्रीराम नाम की महिमा सत्य सत्य लिखी थी तथापि पंडितोंने कहा कि "लिखा तो है परन्तु कैसे जान पड़े कि यह हत्या से छूटगया ?" आपने उत्तर दिया कि "जिस प्रकार से तुम लोगों को प्रतीतआवै सो कहो।" पंडितों ने आपस में संमत करके कहा कि "इस के हाथका पदार्थ श्रीविश्वनाथ जी का नन्दी (पाषाण का बैल) भक्षण करलेवै तब इसको शुद्ध जान पंक्ति में ग्रहण करलें।" आपने कहा बहुत अच्छा चलिए।

थाल में प्रसाद भरके उसके हाथ में देकर समाज सहित नन्दी के पास आये, और श्रीतुलसीदास जी ने विनय पूर्वक नन्दी जी से कहा कि "आप श्रीराम नाम के प्रताप से मतिको सरस कर इसके हाथ का प्रसाद पाइये, क्योंकि श्रीराम नाम का प्रताप जैसा आप जानते हैं वैसा मैं नहीं कह सकता।" यह सुनतेही नन्दीश्वरजी प्रसन्न होकर सब प्रसाद पागये। देखके सब सज्जन गोस्वामी जी के विश्वास पर रीझके "जय जय" धुनि करने लगे। श्रीराम नाम की जय, श्रीतुलसीदास जी की प्रतीति कीजय।

(६४२) टीका। कवित्त (८४३–६४२ = २०१)

आए निसि चोर, चोरी करन हरन धन, देखे श्याम घन, हाथ चाप सर लिये हैं। जब जब आवैं, बान साँधि

डरपावैं, एतौ अति मडरावैं, ऐपै बली दूरि किए हैं॥ भोर आय पूछैं "अजू! सांवरो किशोर कौन?" सुनि करि मौन रहे, आंसू डारि दिए हैं। दै सबैं लुटाय, जानी चौकी, रामराय दई, लई उन्हौ दिक्षा सिक्षा, सुद्ध भए हिये हैं॥ ५१३॥ (६२९-५१३ = ११६)

वार्तिक तिलक।

एक समय रात्रिमें श्रीगोस्वामी जी के हां कई चोर मिल के धन चुराने को आये; सो देखते क्या हैं कि एक घन-श्याम सुन्दर वीर कटि में तरकस बांधे, हाथ में धनुष वाण लिये, खड़ा है। तब चोर चले गये, कुछ देर में फिर स्थान के दूसरी दिशा में आये, वहां भी रक्षक खड़ा धनुष वाण को संधान कर मानो मारही डालेगा। इसी प्रकार स्थान के तीनों दिशाओं में कई बार चोर आये, परन्तु उन सर्वतोमुख रक्षक ने सब ओर से रक्षा की, बरंच अपनी शोभा से चोरों के चित्त को भी चुरा लिया। इतने मे रात्रि भी बीतगई। प्रभुके दरशन से चोरों कीकुछ और ही दशा होगई, हृदय में उस छबि के दरशन की बड़ी अभिलाषा, और शुद्धता, आगई।

सबेरे सब चोर श्रीगोस्वामी जी के समीप आकर पूछने लगे, कि "महाराज! आपके स्थानमें श्यामसुन्दर किशोर बीर धनुष वाण लिये कौन रहता है? कहां है?" और कुछ अपना वृत्तान्त भी कह सुनाए। आप सुनकर मौन हो रहे; और नेत्रों से आंसुओं की धारा चलने लगी। हृदय में यह अनुताप हुआ कि "हाय! यह तुच्छ मायिक

पदार्थ के लिये प्राणप्रिय श्रीरामकृपालु जी ने रात्रि में चौकी दी ! " उसी क्षण सब द्रव्य बरतन आदिक पदार्थ लुटादिये। श्रीराम दरसन से, और श्रीगोस्वामी जी की दशा देख, चोरों के हृदय अति शुद्ध होगये, चरणों में पड़ कर, प्रार्थना कर, श्रीराम मंत्र पंच संस्कार सदुपदेश लिये, और कृतार्थ हुये।

(कवित्त सवैया)

अति सुन्दर रूप अनूप महा छवि कोटि मनोज लजावनि हारे ।
उपमा न कहूं सुखमा के सुमंदिर मंदिरहू के बचावनि हारे ॥
दिननायकहूं निशिनायकहूं मदनायक के मद नावनि हारे ।
सांवर राजकिशोर वशो-चित्त-चोरनहूं के चोरावनि हारे ॥ १ ॥

(६४३) टीका । कवित्त (८४३-६४३ = २००)

कियो तन विप्र त्याग, तिया चली संग लागि; दूरहीं ते देखि, कियो चरण प्रनाम है । बोले यों " सुहागवती, " " मर्यो पति होऊं सती, " " अब तौ निकसि गई ज्याऊं सेवौ राम है "॥ बोलिकै कुटुंब कही " जौ पै भक्ति करौ सही, " गही तब बात जीव दियो अभिराम है । भये सब साधु व्याधि मेटी लै बिमुखता की जाकी बास रहै तौ न सूझै श्याम धाम है ॥ ५१४ ॥ (६२९-५१४ = ११५)

वार्तिक तिलक ।

श्रीकाशी जी में एक समय एक ब्राह्मण मरगया था उसकी स्त्री पति के शरीर के साथ सती होने को चली जाती थी । मार्ग में श्रीगोस्वामी जी को देख दूरही से चरणों में प्रणाम किया; आपने आशिष दिया कि " सौभाग्यवती हो । " वह बोली " स्वामी जी ! मेरे पती का तो शरीर

छूट गया है, मैं सती होने जाती हूं।" आपने कहा कि "अब तो मेरे मुख से निकल गई; जो तुम श्रीराम जी की भक्ति सेवा करो तो इसको जिवादूं।"

उसके कुटुम्ब भर को बुलाके कहा कि "आज से सब श्रीसीताराम नाम जपो और प्रेमभक्ति में परायण हो, तो यह श्रीरामकृपा से जी उठै।" सुनतेही ब्राह्मण के सब परिवार बोले कि हम सब जन्म भर भजन करेंगे जो यह जी उठै।" आपने कहा "सब हाथ उठाके 'जय जय श्रीसीताराम' कहो।" सब ने ऐसाही किया। उन सब के साथ वह मृतक भी उठके हाथ उठाके "सीताराम" कहने लगा। उसको जीवित देख "जय जय" कार धुनि हुई। तब तो वह ब्राह्मण और उसकी स्त्री तथा सब परिवार श्रीराम मंत्र ग्रहण कर श्रीराम भक्ति युक्त साधु होगये। श्रीगोस्वामी जी ने सब की भक्ति-विमुखता रूपी व्याधि छुड़ादी कि जिस विमुखता की गंधिमात्र रहने से भी श्रीराम श्याम सुन्दर का धाम नहीं सूझपड़ता।

(६४४) टीका। कवित्त (८४३-६४४=१९९)

दिल्लीपति पातसाह अहदी पठाये लैन ताकौ, सो सुनायौ सूबै बिप्र ज्यायौ जानियै। देखिवेकों चाहै नीकै सुखसों निवाहै, आय कही बहु बिनै गही चले मन आनियै॥ पहुंचे नृपति पास, आदर प्रकास कियौ, दियौ उच्च आसन लै, बोल्यौ मृदुवानियै॥ "दीजै करामात जग ख्यात सब

मात किये," कही "झूंठ बात एक राम पहिचानियै" ॥ ५१५ ॥ (६२९—५१५ = ११४)

"पादशाह" پادشاہ = बादशाह = नृपति, महीप।

वार्तिक तिलक।

जब आपके कृपा से ब्राह्मण जी उठा तब चारों ओर सुयश फैल गया। इस बातको दिल्लीपति بادشاہ نورالدین جہانگیر ने भी सुनके, आपका दरसन करने के लिये, दूतों को काशी के सूबादार के पास भेजा, कि "जिन साधु ने मरे ब्राह्मण को जिला दिया है, उनको यहां भेजदो।"

उस सूबादार ने श्रीगोस्वामी जी के समीप आकर प्रार्थना की कि "बादशाह आपका दरशन किया चाहते हैं, कृपाकर के सुखपूर्वक चलिये। महाराज ने बहुत प्रकार से विनय किया है।" आपका बुलाना सुन यहां के बहुत से राजा सेवक लोगों ने कहा कि "स्वामी जी! हम सबों को शंका होती है आप मत जाइये; आपके अर्थ में जो हम सबों के प्राण लागैं तो हम युद्ध में दे सकते हैं। सुनके आपने आज्ञा दी कि कोई शंका की बात नहीं है, हम जाके मिल आवेंगे।"

आप सब को समझाके श्रीगंगा जी में नौका पर चढ़ प्रयाग जी आये, वहां से श्रीयमुना जी में नौका पर चले; मार्ग के लोगों को दरसन देते कृतार्थ करते दिल्ली में यवन राज के समीप गये; वह उठकर खड़ा हो बड़े उच्च आसन पर विराजमान कर मृदु बानी से बोला "आपने मरा मनुष्य

जिवा दिया है यह बात सारे संसार में विख्यात हो गई है इससे मुझको भी करामात दिखाइये । श्रीगोस्वामी जी ने उत्तर दिया " करामात, अजमत आदिक झूठी बात हम एक भी नहीं जानते, केवल श्रीराम जी को जानते मानते भजते हैं ॥ "

(६४९) टीका । कबित्त (८४३–६४९ = १९८)

" देखैं राम कैसौ" कहि, कैद किये, किये हिये " हूजिये कृपाल हनुमान जू दयाल हो " । ताही समै फैलि गए, कोटि कोटि कपि नये, लौचैं तन खोचैं चीर भयौ यों बिहाल हो । फोरैं कोट, मारैं चोट, किए डारैं लोट पोट, लीजै कौन ओट जाय, मान्यौ प्रलय काल हो । भई तब आँखैं, दुखसागरकों चाखैं, अब वेई हमैं राखैं, भाखैं, वारो धन माल हो ॥ ५१६ ॥ (६२९–५१६ = ११३)

" कैद " قید = बन्दीघर में रखना ।

वार्तिक तिलक ।

आपका उत्तर सुन यवनराज सक्रोध बोला कि " देखैं राम कैसे हैं, " फिर अपने मनुष्यों को आज्ञा दी कि " इनको ले जाओ एक गृह में बैठाके पहरा में रक्खो, बिना कुछ करामात दिखाये नहीं छोड़ेंगे " । लोगोंने ऐसाही किया । तब श्रीगोस्वामी जी ने हृदय में अपने करामाती सहायक श्रीहनुमान जी को स्मरण कर विनय किया, " हे श्रीहनुमन्न कृपासिंधो ! अब आप दया कीजिये " ।

उसी क्षण इन पदों को बनाके प्रार्थना की—

(पद) " ऐसी तोहिं न बूझिये हनुमान हठीले ।
साहिब कहूं न राम से तोसे न वसीले ॥ इत्यादि ।

(दूसरा पद) समरथ सुवन समीर के रघुवीर पिआरे ।
मोपर कीवी तोहिं जो कर लेहि भिआरे ॥ इत्यादि । "

आप की प्रार्थना सुनते ही राजगृह में और सब नगर भर में कोटान कोट बन्दर फैल गये, सो कैसे कि नये अर्थात् स्वयं श्रीहनुमान जी बड़े विकराल अनन्त रूप धारण कर आगये और सब की दुर्दशा करने लगे। नखों से दातों से लोगों को नोचने लगे यहां तक कि यवनराज की नारियों के वस्त्रों को चीर फाड़ डाले नोंच चोंथ के विकल कर डाला। वानरवृन्दों ने जैसा लंका में उपद्रव किया था वैसाही यहां उत्पात मचाया, कोट को तोड़ फोड़ डाले उन्हीं पत्थरों से लोगों को चोट मारते लोट पोट किये डालते थे सब लोग हाय हाय कर रोने पुकारने लगे कि अब हम किस की ओट से बचें सब ने यही जाना कि प्रलय हुआ, महा उत्पात देखा। तब यवनराज के हृदय की आंखें खुलीं, दुख के समुद्र में डूब के निश्चय किया कि अब वेई फ़क़ीर हमारी रक्षा करेंगे उन्हीं के ऊपर हम अपना धन सम्पति निवछावर कर देंगे।

(६४६) टीका । कवित्त (८४३–६४६ = १९७)

आप पाय लिये, " तुम दिये हम प्रान पावैं, " आप समझावैं "करामात नेकु लीजिये"। लाज दबिगयो नृप, तब राखि लयो, कह्यो "भयौ घर रामजू कौ बेगि छोड़ि दीजिये"॥

मुनि तजि दयौ और कर्यौ लै के कोट नयौ, अबहूं न रहै कोऊ वामै, तन छीजियै। काशी जाय, वृन्दावन आय मिले नाभा जू सों, सुन्यौ हो कवित्त निज रीझ मति भीजियै ॥ ५१७ ॥ (६२९–५१७ = ११२)

वार्त्तिक तिलक।

बादशाह दौड़ता हुआ आके श्रीगोस्वामी जी के चरण पकड़ कर विनय करने लगा कि "अब हम लोगों के प्राण आपके दिये हुये मिलते, और प्रकार से नहीं बच सक्ते।" सुनके श्रीगोस्वामी जी ने कहा 'कुछ काल करामात तो देख लो"। आपके वचन सुन अति लज्जित हो, कहने लगा कि "सब देखलिया अब रक्षा कीजिये"। आपने आज्ञा की कि "जो रक्षा चाहो तो हाथ उठाकर सब लोग श्रीराम जी की दोहाई दो"।

उनने ऐसा ही किया। तब श्रीहनुमान जी ने अपना क्रोध उपद्रव शांत करलिया। तदनन्तर श्रीगोस्वामी जी ने प्रथम पदों में जो श्रीहनुमान जी को प्रणय कठोरता कही थी उसके छमापन में इस पद से प्रार्थना की।

(पद) "अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इनको बिलग न मानिये बोलहि नविचारी" इ०।

छमा होनेपर यवनराज ने श्रीगोस्वामी जी से बहुत प्रेम प्रार्थना कर कहा कि "अब मुझे कुछ आज्ञा दीजिये सो

सेवा करूं, " आपने कहा कि " यह तुम्हारा घर, नगर श्री राम जी का हो गया श्रीहनुमान जी ने थाना कर लिया इसको तुम शीघ्र छोड़ दो; " आज्ञा सुन वह उस निवास को छोड़ दूसरा नया कोट निर्माण कराके उसी में जा रहा। अब तक भी उस पुरानी जगह में कोई नहीं रहता; यदि रहै तो वह बन्दरों के मारे रहने न पावै ।

फिर श्रीगोस्वामी जी दिल्ली से काशी जी को चल दिये। मार्ग में वृन्दावन में आकर श्रीनाभास्वामी जी से प्रेम पूर्वक मिले; श्रीनाभा जी जो भक्तमाल में आप के यशका छप्पै लिखा था सो सुनाया श्रीसीताराम कृपा स्मरण से दोनों ने परम सुख पाया ॥

(६४७) टीका । कवित्त (८४३-६४७=१९६)

मदन गोपाल जू कौ दरसन करि कही, " सही राम इष्ट मेरे दृष्टि भाव पागी है " । वैसही सरूप कियौ, दियौ लै दिखाइ रूप, मन अनुरूप छबि देखि नीकी लागी है ॥ काहू कही " कृष्ण अवतारी जू प्रसंस महा, राम अंस, " सुनि बोले " मति अनुरागी है । दशरथ सुत जानौ, सुन्दर अनूप मानौ, ईशता बताई रति बीस गुनी जागी है " ॥ ५१८ (६२९-५१८=१११)

वार्तिक तिलक ।

वृन्दावन में श्रीगोस्वामी जी श्रीनाभास्वामी जी को

मिलके अति सुखी हुये; फिर उन्हीं के साथ और वैष्णवों के सहित मुख्य मंदिरों में दरशन करते, श्रीमदनगोपाल जी के मंदिर में आये । वहां श्रीगोस्वामी जी दंडवत प्रणाम करना चाहते थे कि एक कृष्णोपासक ने परशुरामदास जी कृत यह दोहा पढ़ा—

(दो०) " अपने अपने इष्ट को, नवन करैं सब कोय ।
इष्ट विहीने परशुराम, नवे सो मूरख होय " ॥ १ ॥

(दो०) " परशुराम के वचन सुनि, मानत हिये हुलास ।
सीता रवन सँभारिकै, बोले तुलसीदास ॥ १ ॥
कहा कहौं छवि आज की, भले बने हौ नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धरो धनुष सर हाथ " ॥ २ ॥
मुरली लकुट दुराय कै, धर्‌यौ धनुष सर हाथ ।
तुलसी लखि रुचि दासकी, नाथ भये रघुनाथ ॥ ३ ॥

(चौ०)"यह प्रत्यच्छ देख्यौ संसारा, वृन्दावन मार्‌यौ जयकारा"

एक समय ज्ञानगूदरी में श्रीगोस्वामी जी जा विराजे; किसी ब्रजवासी ने कहा कि "श्रीकृष्णचन्द्र अवतारी बड़े प्रशंसनीय हैं (श्लो०) " एतेचांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् " सो इनको छोड़ आप अंशावतार श्रीराम जी को क्यों भजते हैं ? " सुनते ही श्रीगोस्वामी जी श्रीरामरूप माधुर्यानुराग बुद्धियुक्त बोले " मैं तो श्रीच-क्रवर्ती महाराजाधिराज श्रीदशरथ जी के सुत जान परम

सुन्दर अति अनूप मान सानुराग भजता था, आज आपने अंश ईश्वरता भी बतादी, इससे मेरी रति प्रीति श्रीराम श्यामसुन्दर जी में कोटि गुनी जग उठी " ॥

(दो०) "जौ जगदीश तौ अति भलौ, जौ भूपति तौ भाग ।
तुलसी चाहत जन्मभरि, राम चरण अनुराग ॥१॥"

(चौ०) " यह सुनि जानि अनन्य उपासी ।
गहे चरण सब संत हुलासी ॥ "

देखिये श्रीगोस्वामी जी यद्यपि श्रीरामपरत्व सर्वाअवतारित्व प्रमाण देकर उनको निरुत्तर कर सक्ते थे तथापि माधुर्यपरत्व ही से जीति लिये क्योंकि आप का सिद्धांत ऐसा ही है ।

(दो०) जो मधु दीन्हे ते मरै माहुर दियो न जाय ।
जग जित हारे परशुधर हारि जिते रघुराय ॥

(दो०) फीके विना अनन्यता यद्यपि बड़े महान ।
सुन्दरता वर वादि सब विना नाक अरु कान ॥

☞ गोस्वामी श्री १०८ तुलसीदास जी महाराज तथा "श्रीरामचरित मानस" की प्रशंसा में, काशी वासी साहित्याचार्य्य श्री अम्बिकादत्त व्यासजी ने जो कवित्त लिखे हैं, सो कविता भी देखने ही योग्य हैं ॥

श्रीहनुमत्कृपापात्राय श्रीमतेतुलसीदासाय नमः ।

श्लोक–श्रीमत्प्राचेतसरूपिणे सुकवये कोदण्डभृद् ध्यायिने भाषाकाव्यविधायिने स्वजनता जाड्यौघविध्वंसिने ॥ श्रीरामामृतवर्षिणे जनकजाप्रेष्ठानुरागाब्धये तस्मै श्रीगुरवे नमोस्तु तुलसीदासाय गोस्वामिने ॥ १ ॥

सोरठा ॥ बन्दौं तुलसीदास जिन जसमानस निर्मयो ॥ सीतारामनिवास प्रेमजलद ससिसन्त हित ॥ १ ॥

चौ० ॥ बन्दौं तुलसिदास गोस्वामी ॥ जासु सुमति सबके उर जामी ॥ १ ॥ ध्यावत जपत नाम अरु नामी ॥ भजनानंद आतमारामी ॥ २ ॥ परम उपासक वरव्रत धारी ॥ रामनाम रत पर उपकारी ॥ ३ ॥ कलिके कुटिल जीव निस्तारी ॥ कृपानिधान कुमति अघ हारी ॥ ४ ॥ (दोहा) जय श्रीतुलसीदास जी रामनाम गति जाहि ॥ रामचरित मानस रच्यो कलिअघ डार्यो दाहि ॥५॥

छप्पै–तुलसी तुलसी ते अधिक रामपतिव्रत पीनभे ॥ बानी विमल बखानि रामकीरति विस्तारे । कलिमल करि विध्वंस कुटिल जीवन निस्तारे ॥ संतसरो रुहखंड सुखद मार्तंड अखंडित । सीतापति पद पद्म प्रेमपथ पूरे पंडित ॥ भाव-भक्ति रसरङ्गमणि रामनाम जल मीनभे । तुलसी तुलसी ते अधिक रामपतिव्रत पीनभे ॥ १ ॥ भयो न है होइन सिय रामरसिक तुलसी सरिस ॥ रामनामगति स्वातिबुंद चातक रट पागी । रामचन्द्र मुखचन्द्र चकोरकचख अनुरागी ॥ अक्षर अक्षर ब्रह्म अर्थ जनु सगुण रूपरस ॥ शब्दब्रह्म मथि सुधासार बरन्यो सियवरजस ॥ हनुमत शिव सरवस सुमत रसरङ्ग सिंधु घन सुख बरिस । भयो न है होई न सीय रामरसिक तुलसी सरिस ॥२॥ (कवित्त) मनको प्रबोध सत्य आतमको सोध अविरोध ब्रह्मबोध रस रामनाम सींची है । राम अनुराग सुधा सुजन चकोर पागे पीवैं बड़भागे मानो चन्द्रमा मरीची है ॥ सुमन सुजुक्ति उक्ति संजुत सुभाव बास सुकवि सु भृंगनको सुखद बगीची है । स्वादित समीची चारु निगम निचोर खींची तुलसी सु बानी सुधा सिंधुकी सु बीची है ॥ १ ॥ बेदनकी सार काव्यभेदनकी सार चारु चातुरी चमत्कार सार रससानीमें ॥ प्रेमकी पढ़ावनी बढ़ावनी विरति ज्ञान अंतमें

चढ़ावनी श्रीरामरजधानीमें ॥ भानी भालके कुअंक हाल रंक राजदानी करै रसराम मणी मोदता यिलानीमें । पाइहै न प्रानी रामभक्ति सुखखानी अति जो न रातमीनी बसी तुलसी की बानी में ॥ २ ॥

जमके अनीकी मुख लावनो मसीकी मानो कन्या भानुजीकी मोद-मथुरा पुरी की है । करुणा हरीकी सुखनैनते बहीकी रसरंगतारणीकी धार सरजू सरीकीहै ॥ काटनी कसीकी त्रिषै आस फँसरीकी मुख्यस्थान में बसीकी चोखी * पुत्रिका असीकी है ॥ सारद ससी की सम हरै ताप जीकी प्रेम भक्ति सियपी की दानी बानी तुलसीकी है ॥ ३ ॥ तुलसी कही है कथा पुलसी भवांबुधिकी श्रुति सिंधु मथि सुधामाधुरी निकारी है । चाखन लगेहैं रामभक्त अभिलाखनसों लाखन कुलोग सुनि भये अविकारी हैं ॥ सीताराम-रूपलीला लोनी जो परोच्छ सबै सुनत प्रत्यच्छ दीसैं मानो चित्र सारी हैं । मोद उदगारी लगै सबहीको प्यारी भरी सिया कृपा भारी " रसरङ्ग " मनहारी है ॥ ४ ॥ खान एह धन्य अन्न अरपित सीताराम मंत्रवित पर्‍यो जामें दल तुलसीकोहै । थान गेह धन्य जहा रहैं रामानन्यसंत रोप्यो पुन्यपादप सुथल तुलसीकोहै ॥ मानदेह धन्य जामें तिलक सुभाल छाप बाणचाप बाहु माल गल तुलसीकोहै । कान वेह धन्य जे सुनैं सुजस "रसराम" मुख धन्य गावैं पदकल तुल-सीकोहै ॥ ५ ॥ तुलसीकी बानी प्रभु तुलसी सी मानी लीन्हे संग सियारानी सुनै आप मुसुकैयां हैं । ज्ञानी रामध्यानी भक्त संत जे अमानी कौन बात नर प्रानी पढ़ैं प्रेमसों चिरैयाँ हैं ॥ सेवै हरषैयाँ पद दोहा चौपैयाँ रसरङ्ग वरषैयाँ सुख मानो सुरगैयाँ हैं । रामहींकी नैयाँ जीव राखे सरनैयाँ कालि साधु सुखदैयाँ गोसाँई जी गोसैयाँ हैं ॥ ६ ॥ रुद्रकृपा मुद्रित सुकबिता सुनत लोग कंपत समुद्र जग जैसे छुद्र खाँई हैं । गावत भरत भाव भावत न मोद हिये कान किये आवत सु प्रेम बरि अभाँई हैं ॥ बिनै बालबंदनाको बाँचत सुनावत त्यों रामनाम रसरङ्ग रसना सुठाँई हैं । रामहीं की नाँई हरे भीति भव भाँई करे राम सरनाँई गुरु मेरे श्रीगोसाँई हैं ॥७॥ व्यासने पुरान गायो कपिल सुनायो सांख्य गौतम

ने गायो न्याय तर्क जहाँतांई के। जैमिनि करमकांड योग को पतंजलिने सांखिलहू भक्ति भने साधन सुसाँई के ॥ शंकर वेदांत भाषें मध्वाचार्य द्वैत चाषें ऐसे रसरङ्ग मत बाद सब ठाँई के। रामाकार काव्य कऱ्यो जग भक्तिभाव भऱ्यो रामप्रेम पाले पऱ्यो तुलसी गोसाँई के ॥ ८ ॥ मेरी सीय पीय हीय हुलसी जो तुलसी के आनन ससी सों बही बानी सुधा सानी है। पीवैं पुन्यप्रानी जसराम गंगपानी रसरङ्ग रसदानी भवभीति मीचु भानी है ॥ ज्ञान मयी ज्ञानी सत–कविन सुकाव्य मानी धर्म रत राजनकों राजनीति छीनी है। सुनैं सुख-खानी पगे प्रेमी प्रेम ठानी राम आशिकौंने जानी साँची इश्ककी कहानी है ॥ ९ ॥ (सवैया) तुलसी कविता सविता तमहारि खरारि सिया छबिता हुलसी। हुलसी नवधा दसधा सु लसी मद मोह महानदकों पुल सी ॥ पुलसी सब टूटि गई जमकी सुनि जीव तजैं कुमती कुलसी। कुल सी यह संतनके गुणकी गहु "राममणी" कविता तुलसी ॥ १० ॥ शिवकी शिवता कविता हनुमन्त सु सन्तन की समताहुलसी ॥ रमता सियराम स्वरूपहिं की नमता सुभुसुंडिकी आय वसी। ससि सीतलता सुम कोमलता मदता कल कल्पलता कि लसी। रसरंगमणी अस जानि हिए गहु रामकथा कथिता तुलसी ॥ ११ ॥ कविता सुनि गाय सु लोग तरैं सु लसी भव-सागर के पुल सी। रसरङ्गमणी जेहिं बाँचि अनंत सुसंत भए इमसे अलसी ॥ अस सेवक पाय सिया प्रभुकी कलिमें भगती भवमें बिलसी। तुलसीकृतमें अति प्रेम जिन्हैं प्रिय ते रघुनाथहिं ज्यों तुलसी ॥ १२ ॥ छन्द कुंडलिया ॥ संवत सोरह सै असी असी गंगके तीर ॥ श्रावण सुक्ला सप्तमी तुलसी तजे सरीर ॥ तुलसी तजे सरीर ध्याय श्रीराम नाम कहि। कुटिल जनन निस्तार हेतु कविता करिगे महि ॥ जेहिं पढ़ि सुनि रसराम सरिस रामहिं अवलम्बत। करत सुजन गोस्वामि निमित उत्सव प्रति सम्बत ॥ १३ ॥

छन्द बरवै ॥ इति श्रीमतगोस्वामीतुलसीदास ॥ यशबिलास जयमंगल करन प्रकाश ॥ सीताराम शरण जन मणिरसरङ्ग ॥ अवध सरजुतट बिरचित संतनसङ्ग ॥ कहहिं सुनहिं जे सज्जन सहित हुलास॥ लहहिं लोक परलोकहुँ यश सुखरास॥ १ ॥

गोस्वामी श्री १०८ तुलसीदास जी के चरित्र अपार हैं। इस दीनने केवल उतनाही मात्र लिखा है कि जितना श्रीप्रियादास जी के कवित्तों में वर्णित है ॥ चौपाई ॥

रामनाम अनुराग गुसाईं! दीजिय, प्रभु! निजदास कि नाईं ॥

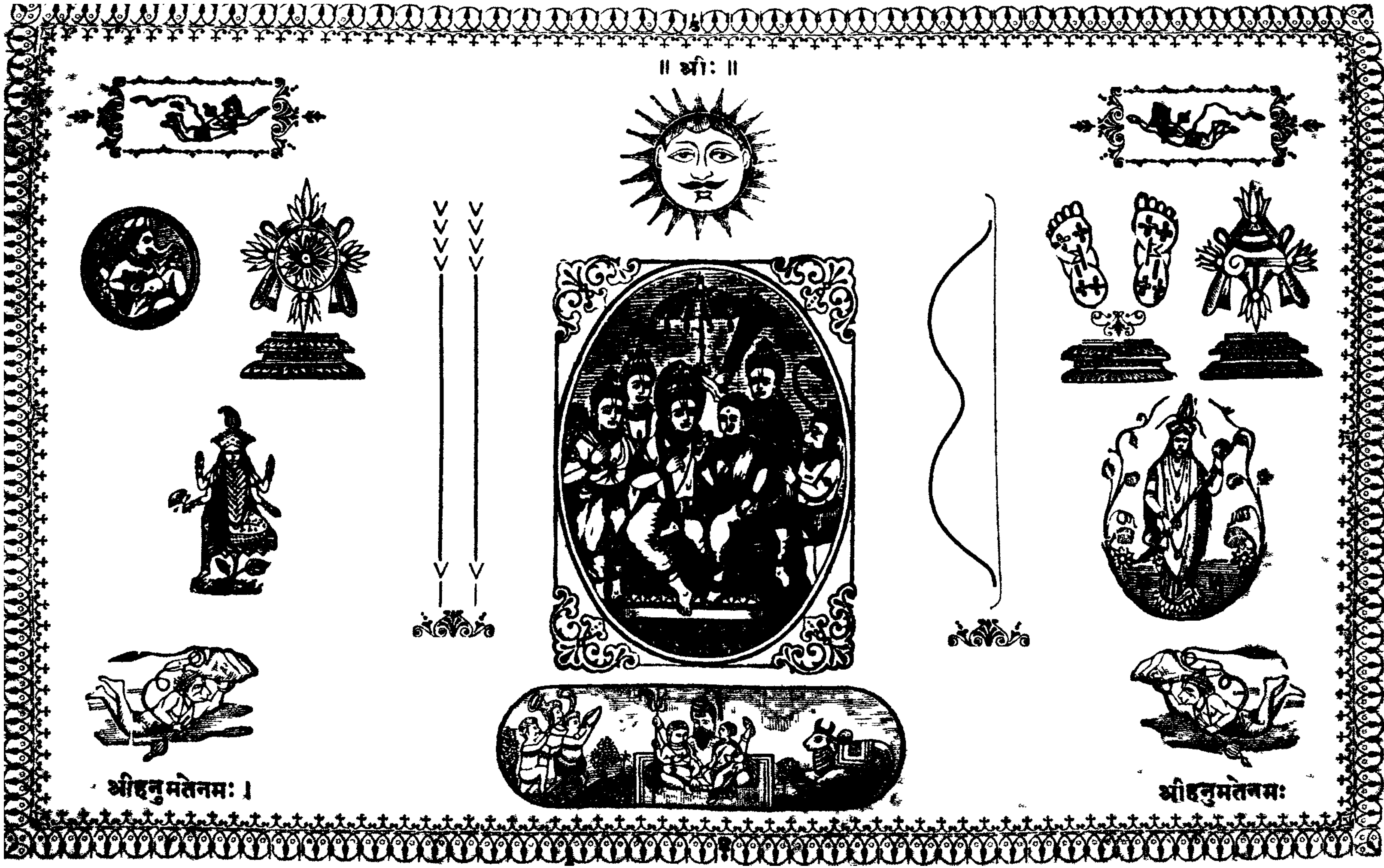
श्रीसीतारामार्पणमस्तु

भक्त	कथा
७१४	३७२
मूल	टीका
२१४ में से	६२९ में से
१२९	५१८
रहे ८५	रही २११

१९६५ कलि ५००९, आश्विन, विजयादशमी। 1908

इति "श्री भक्तमाल" की चौथी माला का उत्तरार्द्ध समाप्त ॥

(श्री अयोध्याजी) ❋ शुभम ❋ (श्री प्रमोदवन)


॥ श्रीः ॥
श्रीहनुमतेनमः।
श्रीहनुमतेनमः

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीश्यामनायकायै नमः । श्रीहंसकलायै नमः ॥

दोहा

परमहंस " सीताशरणं ", राम-प्रेम-आगार ।
सन्तशिरोमणि, "लाल"-प्रिय, नेमी, सहज उदार ॥ १ ॥
"राम वल्लभाशरणं" शुचि, पण्डित, सन्त, प्रबीन ।
जानकिघाट प्रमोदबन, शोभा नित्य नवीन ॥ २ ॥
भक्तमाल, भागौत, श्री वाल्मीकि, तुलसीक ।
सन्तसमाज बखानहीं, होत पियूषहु फीक ॥ ३ ॥
हनुमतपद पङ्कज मधुप, सन्त " गोमतीदास[3] " ।
हरिजनवल्लभ, सर्वहित, तेजपुंज, तपरास ॥ ४ ॥
तजि कामादिक मद विषय, सीताराम जपन्त ।
बसत अयोध्या धाम नित, ये तीनों बरसन्त ॥ ५ ॥
नेम-प्रेम-विज्ञान-सर, विकसित तीनों कंज ।
पद पराग जे सीस धर, ते जन धनि सुखपुंज ॥ ६ ॥
स्वामी गंगादास[5] जी; रघुबरयश कवि शिष्ट ।
सखा रामरसरंग मणी, अवध, नाम, प्रभु निष्ट ॥ ७ ॥
श्यामसुन्दरी शरण जी[6], रसिक सिंगारप्रवीन ।
कनकभवन सियराम पद, रति जेहि नित्य नवीन ॥ ८ ॥
युगलबिहारिणिशरणं जी, पंडित श्रीशिवराम ।
रामनरायनदास[8] जी, पण्डित सद्गुण धाम ॥ ९ ॥
रामरतन[10] पंडित विदित, बड़ी जगह अधिकारि ।
जगन्नाथ[11] पंडित गढ़ी, रामकोट अविकारि ॥ १० ॥
मणिगिरि श्रीपेहारि[12] जी, पुण्यपयोधि उदार ।
साधु स्नेह, हरिभजनरत, प्रियवद, पैआहार ॥ ११ ॥
ये द्वादश[12] शुभगुणभवन, परम प्रसिद्ध महान ।
भक्ति विवेक सुनेम के, खानि सुसन्त सुजान ॥ १२ ॥
श्रीप्रमोदवन प्रभु * शरणं[13], ऋणमोचन पर वास ।
पंडित माधवदास जी[14]; अरु विश्वेश्वरदास[15] ॥ १३ ॥
सेठ ग्वालियर बासि को, मन्दिर स्वर्गद्वार ।
बालमुकुन्दाचारि[16] तहँ, पण्डित विगत विकार ॥ १४ ॥

* श्री ५ प्रमोदवन विहारी शरण जी ।

श्रीअयोध्याजी । प्रमोदवन । सीताराम शरण भगवान् प्रसाद

रूपकला कुंज. संवत १९६६=1909.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमते विष्वक्सेनाय नमः । श्रीमते नारदाय नमः

* श्रीमते रामानुजाय नमः । श्रीमते रामानन्दाय नमः *

नमो नमो ब्राह्मणेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमोनमः

श्रीसीतारामाभ्यांनमः

श्रीगुरवे हनुमते नमः

श्रीअयोध्यासरयूभ्यांनमः। श्रीअयोध्यामिथिलाभ्यांनमः। श्रीउमागौरीगिरिजाभवानीअन्नपूर्णादेव्यैनमः । श्री-शारदासरस्वतीदेव्यैनमः । श्रीगंगासुरसरीदेव्यैनमः। श्रीश्रीभक्तिदेव्यैनमोनमः। श्रीश्रीकृपादेव्यैनमोनमः। श्री-तुलसीदेव्यैनमः। श्रीचारुशीलादेव्यैनमः। श्रीचन्द्रकला देव्यैनमः। श्रीकमलादेव्यैनमः। श्रीविमलादेव्यैनमः। श्रीउत्कर्षिणीदेव्यैनमः। श्रीज्ञानादेव्यैनमः। श्रीक्रिपा-देव्यैनमः। श्रीयोगादेव्यैनमः। श्रीप्रह्वीदेव्यैनमः। श्री सत्यादेव्यैनमः। श्रीईशानादेव्यैनमः। श्रीअनुग्रहादेव्यै नमः। श्रीअग्रआलीदेव्यैनमः। श्रीनृत्यकलायैनमः। श्रीहंसकलायैनमः। श्रीश्यामनायकायैनमः।

(दो०) जय श्रीसिय, श्रीमाण्डवी, श्रुतिकीरतिगुणखानि।
भक्तिप्रदा श्रीउर्मिला रूपकला की रानि ॥

श्रीयुगलसर्कार! तुम्हारी और तुम्हारे प्यारे प्यारियों की जय।

तुम्हारी कृपा से तुम्हारे सम्मुख, श्रीभक्तमाल की पंचम (अन्तिम) माला आज प्रारम्भ की जाती है, तुम्हारी भक्ति और कृपा की जय॥

(२०३) श्रीमानदास जी।

(६४८) मूल। छप्पै। (८४१-६४८=१९९)

गोप्य केलि रघुनाथ की, मानदास परगट करी॥
करुना वीर सिंगार आदि उज्जल रस गायौ। पर
उपकारक, धीर, कवित, कविजन मन भायौ॥
कौशलेस पद कमल अननि दासत ब्रत लीनौ।
जानकीजीवन सुजस रहत निसि दिन रँग भीनौ॥
रामायन नाटक की रहसि उक्ति भाषा धरी।
गोप्य केलि रघुनाथ की मानदास परगट करी
॥ १३० ॥ (२१४-१३०=८४)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीजानकीजीवन रघुनाथ जी की गुप्त केलि (रहस्य लीला), श्रीमानदास जी ने काव्य द्वारा प्रगट की; उन लीलाओं में करुणा रस, बीर रस; उज्जल शृङ्गार रस, आदि, सब रस अति उज्वलता से गान किये, और बड़े परोपकारी अति धीर हुये। आपका कवित्त कविजनों के मनमें बहुत अच्छा लगता था। श्रीकोशलेश रामचन्द्र जी के चरण कमलो में अनन्य (१) दासत्व का व्रत धारण किया।

श्रीजानकीजीवनजी के सुयश अनुराग के रंग में दिन रात भीगे रहते थे। श्रीरामायण जी तथा श्रीहनूमन्नाटक आदिकों की सब रहस्य उक्तियां भाषा में वर्णन कीं। ऐसे श्रीमानदास जी हुये आपने शृङ्गार रस और माधुर्य्य बहुत ही उत्तम रीति से लिखा है।

(१) (दो०) जप तप तीरथ सुलभ हैं सुलभ योग वैराग।
दुर्लभ भक्ति अनन्यता राम नाम अनुराग॥ १॥
रामरूपरत, धाम रहि, लीला राम अनन्य।
राम नाम मुख मंत्र जप कर रसरङ्ग सो धन्य॥ २॥
"सी" कहते सुख ऊपजै, "ता" कहते तम नास।
तुलसी "सीता" जो कहै, राम न छाड़ैं पास॥ ३॥

(२०४) श्रीगिरिधर जी।

(६४९) मूल। छप्पै। (८४३-६४९=१९४)

(श्री) वल्लभजू के वंश मै, सुरतरु गिरिधर भ्राजमान॥ अर्थ धर्म काम मोक्ष भक्ति अनपायनि दाता। हस्तामल श्रुति ज्ञान सब ही शास्त्र को ज्ञाता॥ परिचर्य्या ब्रजराज कुँवर कें मनकों कर्षै। दरसन परम पुनीत सभा तन अमृत बर्षै॥ विठ्ठलेश नंदन सुभाव जग कोऊ नहि ता समान। (श्री) वल्लभजू के वंश मै सुरतरु गिरिधर भ्राजमान॥ १३१॥ (२१४-१३१=८३)

वार्तिक तिलक।

श्रीवल्लभाचार्य्य जी के वंश में, श्री "गिरिधर" जी

कल्पवृक्ष के समान सोभा को प्राप्त हुए । अर्थ धर्म काम मोक्ष तथा अनपायनी भक्ति के देनेवाले हुये । श्रुति सम्भव ज्ञान आपको हस्तामलक था, तथा सब शास्त्रों के ज्ञाता थे । आपकी की हुई सेवा परिचर्य्या श्रीव्रजराजकुमार कृष्णचन्द्र जी के मन को खींच लेती थी। अति पुनीत दर्शनयुत सभा में बैठि वचनामृत की वर्षा करते थे। श्री विट्ठलेशनन्दन जी के सुभाव के समान जगत् में और किसी का सुभाव न हुआ॥

छापेकी किसी पोथी में इस छप्पै के अनन्तर एक छप्पै है कि जो पुरानी किसी प्रति में नहीं पाया जाता। निश्चय होता है कि उस पु. के छ. वाले के पुरषा सोनी थे। " विट्ठलवंश कल्यान के शिष्य सोनि सद्गुण निकर, इत्यादि " ॥

(२०५) श्रीगुशाईं गोकुलनाथ जी ।

(६५०) मूल। छप्पै (८४१-६५० = १९१)

(श्री) वल्लभजू के वंश मै गुननिधि "गोकुलनाथ" अति ॥ उदधि सदा अक्षोभ सहज सुन्दर मितभाषी। गुरुवत्तन गिरिराज भलप्पन सब जग साषी ॥ विट्ठलेश की भक्ति भयौ वेला दृढ़ ताकैं । भगवत तेज प्रताप, नमित नरवर पद जाकै ॥ निर्व्विलोक आसय उदार, भजन पुंज गिरिधरन रति । वल्लभजू के वंश मै गुननिधि गोकुलनाथ अति ॥ १३२ ॥ (२१४-१३२ = ८२)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीवल्लभ जी के वंश में (आप के पोते) श्री "गोकुलनाथ" जी अति उत्तम गुणों के सिंधु हुये। समुद्र के समान क्षोभ रहित, गंभीर सहज सुन्दर, मितभाषी हुये। और आपका शरीर पुष्ट गौरव युक्त गिरिराज सम था, इस बात के साक्षी जगत भरके लोग थे कि आप बड़े भलप्पन साधुता युक्त हुये। श्रीविठ्ठलेश जी की भक्तिसागर के आप दृढ़ वेला (मर्यादा) के समान हुये। श्रीभगवान् के तेज प्रताप युक्त होने से आप के चरणों को श्रेष्ठ नर वन्दते थे। सत्ययुक्त, उदार, अन्तःकरण भजनपुंज, गोवरधननाथ जी के प्रीत में परायन हुये॥

(१) पृष्ठ ८४६ देखिये।

(२) इस्के पूर्व छप्पै की टिप्पनी देखिये। "विट्ठल वंश कल्यान के, शिष्य सोनि सद्गुण निकर॥ ३०" यह एक छप्पै किसी छपी पोथी में है, परन्तु पुरानी किसी प्रति में नहीं पाया जाता।

(३) मूल ८० पृष्ठ ८४० देखिये।

(४) आप सात भाई थे, श्रीविट्ठलनाथ जी की कथा देखिये, पृष्ठ ८४०

(५) पांच वर्ष तक आप श्रीभगवत आवेश विभूति थे।

(६५१) टीका। कवित्त (८४३-६५१ = १९२)

आयौ कोऊ शिष्य होन ल्यायौ भेट लाखन की, भाखन की चातुरी पै मेरी मति रीझियै। कहूं है सनेह तेरो? जाके मिलें विना देह व्याकुलता होय जोपै, तौ पै दीक्षा दीजियै॥ बोल्यौ "अजू मेरौ काहू वस्तु सो न हेत नेकु,"

" नेति नेति कही हम, गुरु ढूंढि लीजियै ॥ प्रेमहीं की बात इहां करही पलटि जात, " गयौ दुख गात, कहो कैसें रंग भीजियै ॥ ५११ ॥ (६२१–५११ = ११०)

वार्तिक तिलक ।

एक समय कोई धनी मनुष्य लक्षावधि की सम्पत्ति भेट देने को लेकर श्री " गोकुलनाथ " जी के समीप आया; आप के बोलने की चातुरी में, मेरी मति रीझ गई कि उस्से पूछा " किसी में तेरा इस प्रकार का स्नेह है कि जिसके मिले विना तेरे तन मन में व्याकुलता हो जाय? यदि हो तो हम तुझको दिक्षा देवैं " वह बोला कि "मेरा किसी वस्तु में किंचित भी स्नेह नहीं है "

सुनकर उत्तर दिया कि " हम तुझे शिष्य नहीं करेंगे तू अपने लिये और गुरू कहीं ढूंढ़ ले, क्योंकि हमारे भक्ति मार्ग में एक प्रेम ही प्रेमकी वार्ता है; जो उसके प्रेम पदार्थ होवे तो शिष्य कर उसको संसार की ओर से, कल सरीसे, पलटके प्रभु में लगा देवैं; और जो तेरे हृदय में प्रेम का बीज ही नहीं है, तो श्री भक्ति रूपी वृक्ष कहां से उत्पन्न होगा ? " आपका उत्तर सुन वह दुखी होकर, चला गया। वह शून्य हृदय वाला प्रभु के प्रेम रंग में कैसे भीजे ?

(६५२) टीका । कवित्त (८४३–६५२ = १९१)

कान्हा हो हलालखोर, चोरि दियौ मन लैके स्याम रस सागर मै नागर रसाल है। निसि को सुपन मांझ, निपुन श्रीनाथ जू नै, आज्ञा दई, "भीत नई भई ओट साल है॥

गोकुल के नाथ जू सों वेगि दै जताइ दीजै 'कीजै याहि दूर छबि पूर देखौ ख्याल है'"। भोर जौ विचारै, नहिं धीरजकों धारै, "उहां जांऊं कोऊ मारै, पैंड़ें पर्‌यो यह लाल है"॥ ५२०॥ (६२९–५२० = १०९)

"हलालखोर" حلال‌خور = भंगी।

वार्तिक तिलक।

श्रीगोकुलनाथ जी ने देखा कि श्रीगोवर्द्धननाथ जी के मंदिर के सामने खड़े होकर बहुत नीच लोग भी दरशन करते हैं; इससे सामने एक भीत का आड़ खिंचवा दिया। एक "कान्हा" जात का भंगी था, परन्तु उसने अति नागर रसाल श्यामसुन्दर रूपी सागर में अपना मन मिला दिया। वह नित्त आता दर्शन करता था पर उस भीत के बनने से अब उसको दरशन मिलना रुक गया, इससे वह बड़ा व्याकुल हुआ। तब प्रेमप्रवीण श्रीनाथ जी ने रात्रिको स्वप्नमें उसको आज्ञा दी कि "यह जो नवीन भीत ओट करनेवाली हुई है सो हमारे मन में सालती है इससे तू गोकुलनाथ जी से कहदे कि इसको शीघ्र गिरवादें हम अपने सामने सब सोभा से पूर्ण कौतुक देखा करें।"

उसने प्रभात में कहने का विचार किया परन्तु धैर्य न हुआ, डर गया, कि "मैं कहने जाऊं, तो कोई मारै न; और ये लालजी मेरे पैंड़े पड़े हैं मुझको पुनः पुनः आज्ञा देते हैं।"

"धन्य धन्य भंगी बड़भागी।
जगत पूज्य हरिपद अनुरागी॥"

(६५३) टीका । कबित्त (८४३-६५३ = १९०)

ऐसें दिन तीन आज्ञा देत बे प्रवीन नाथ, हाथ कहाँ, मेरे बिन गए नहीं सरैगो । गए द्वार द्वारपाल बोले, " जू विचार एक दीजै सुधि कान," सुनि खीझे "बात करैगो" ॥ काहूनें सुनाय दई, लीजियै बुलाय " अहो कहौ, " और दूर करौ, " करे दूरि ढरैगो ॥ जाय वही कही, लही आपनी पिछानि, मिले, सुन्यौ " मेरौ नाम स्याम कह्यौ, नही टरैगो " ॥ ५२१ ॥ (६२९–५२१ = १०८)

वार्त्तिक तिलक ।

प्रेम में प्रवीण श्रीनाथ जी ने कान्हा को इसी प्रकार स्वप्न में तीन रात्रि आज्ञा दी । तब उसने विचार किया कि " अब मेरा बस नहीं है बिना श्रीगोसाईं जी के समीप गये काम नहीं चलेगा " । जाकर द्वारपालों से विनय किया कि " मुझे कुछ कहना है सो आप गोसाईं जी के कान में सुना दीजिये " । सुनकर द्वारपाल खीझ उठे कि " तूँ उनसे बात करेगा ? "

परन्तु किसीने सुना दिया; तब आपने बुलाकर पूछा कि " कहो । " उसने कहा कि आपके समीप से और लोग उठ जावैं तब कहूँगा; " सब उठगये, तब कान्हा स्वप्नमें जो नाथ जी की आज्ञा हुई थी सो सब कहगया । श्रीगोकुलनाथ जी सुनके अति हर्षित हुए कि " प्रभुने मुझे अपना जान आज्ञा दी, बड़ी मंगल की बात है, और कान्हा को मिलके कहा कि "जो श्यामसुन्दर जी ने मेरा नाम लेकर

कहा है तो अवश्य करूंगा।" फिर वह भीत गिरवादी। और कान्हा को कुछ कार्य्य किये विना ही भोजन वस्त्रादि से सत्कार करने लगे॥

(२०६) श्रीवनवारीदास जी।

(६५४) मूल। छप्पै (८४३–६५४=१८९)

रसिक रंगीलौ, भजन पुंज सुठि, वनवारी श्याम कौ॥ बात कबित बड़ चतुर चोख चौकस अति जानै। सारासार बिवेक परम हंसनि परवानै॥ सदाचार संतोष भूत सबकौं हितकारी। आरज गुन तन अमित, भक्ति दशधा ब्रतधारी॥ दरसन पुनीत, आसय उदार, आलाप रुचिर सुख धामकौ। रसिक रँगीलौ, भजन पुंज सुठि "वनवारी" श्याम कौ॥१२३॥ (२१४–१२३=८१)

वार्तिक तिलक।

श्रीवनवारीदास, श्रीश्यामसुन्दर जी के अति रँगीले रसिक भक्त भजन पुंज थे। कविता और वार्त्ता करनी बड़ी चतुरता चोखाई और अति यथार्थता से जानते थे। सारासार विवेक में परमहंसों की नाईं थे। सदाचार में तत्पर, संतोषी, सब प्राणियों के हितकारी, अमित श्रेष्ठ गुणों के निधान, और प्रेमाभक्ति व्रतको धारण करनेवाले थे। उदार अन्तःकरण, प्रिय दरशन, ❋ रुचिर आलाप करनेवाले, सुख

❋ मधुर वचन गान के।

धाम श्यामके, आप ऐसे रसिक थे ॥ आपके दर्शन से लोग पवित्र हो जाते थे ॥

(श्लोक) हे जिह्वे ! रस सारज्ञे ! मधुरं किं न भाषसे ?
मधुरं बद कल्याणि, सर्वदा मधुरप्रिये ॥ १ ॥

(२०७) श्रीनारायण मिश्र जी।

(६५५) मूल। छप्पै (८४३–६५५ = १८८)

भागौत भली विधि कथन कौ, धनि जननी एकै जन्यौ ॥ नाम नरायण मिश्र, वंश नवला जु उजागर। भक्तन की अति भीर भक्ति दशधा कौ आगर ॥ आगम निगम पुरान सार शास्त्रनि सब देखे। सुरगुरु, शुक, सनकादि, व्यास, नारद, जू बिसेखे ॥ सुधा बोध मुख सुरधुनी जस वितान जग मै तन्यौ। भागौत भली बिधि कथन कौ धनि जननी एकै जन्यौ ॥ १३४ ॥ (२१४–१३४ = ८०)

वार्तिक तिलक।

उजागर नवला वंश विभूषण श्रीनारायण मिश्र जी की माता धन्य हैं, जिनने, भली विधिसे श्रीभागवत कथन करने के लिये, आपको अद्वितीय उत्पन्न किया। क्योंकि आगम, निगम (वेद) पुराण, शास्त्रों का सारांश देखे हुये, बृहस्पति, शुक, सनकादिक, व्यासदेव, नारद, जी के समान

आप थे। आपकी कथा में भगवतभक्तों की भीड़ लग जाती थी, और प्रेमाभक्ति में प्रवीण सुधा बोध मुख अर्थात् निज मुख वचन से अमृत सम सुखस्वाद सुबोध देनेवाले हुये। आपकी कथा का जसरूपी वितान, गंगा जी के जल के समान, जगत में छागया॥

दो०—नाम "नरायन मिश्र" जी, "नवला बंश" सुहात।
कोटि जन्म के तम हरैं, आतपलौ विख्यात॥ १॥

महानुभव लोग कहते हैं कि आपको श्रीशुकदेव जी ने प्रतेक्ष दर्शन दे कर श्रीमद्भागवत समझने का आशिर्वाद दिया था॥

---

(२०८) श्रीराघवदास जी।

(६९६) मूल। छप्पै (८४३–६५६ = १८७)

कलि काल कठिन जग जीति यों राघौ की पूरी परी॥ काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ की लहर न लागी। सूरज ज्यौं जल ग्रहै, बहुरि ताही ज्यौं त्यागी॥ सुन्दर शील सुभाव, सदा संतन सेवाव्रत। गुरु धर्म निकख निर्वह्यो, विश्वमें बिदित बडो भृत॥ अल्हराम रावल कृपा, आदि अंत धुकती धरी। कलि काल कठिन जग जीति यौं राघौकी पूरी परी॥ १३५॥ (२१४–१३५ = ७९)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीराघवदास जी ने जगत में कठिन कलिकाल को

जोतछिया, इसीसे आपकी भक्ति साधुता पूरी पूरी निर्वाहि गई । काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, इन सब अग्नियों की लहर आप को नहीं लगी; जैसे सूर्य्य अपने किरनों से जल को सोष लेते हैं, और समय पर वर्षते हैं, ऐसेही आपने भी सब से धनादि लेकर साधुसेवा के समय में त्याग किया और सुन्दर शील सुभाव से युक्त, सदा संत सेवा का व्रत धारण निकष (कसौटी) में जैसे उत्तम सुवर्ण की परीक्षा हो जाती है, इसी प्रकार गुरु सेवा धर्म में आप का निर्वाह हो जाने से विश्व में बड़े गुरुसेवक विदित हुये । आपने श्री "श्रीअल्ह जी और श्रीरामरावल जी" की कृपा से, आदि से अंत तक धुकती अर्थात् प्रभुके ओर झुकतीही दशा को धारण कियेरहे ।

नोट—श्रीरामरावल जी, श्रीअल्ह जी के शिष्य और श्रीराघवदास जी के गुरु हैं ।

(२०९) श्रीबावन जी ।

(६५७) मूल । छप्पै (८४३–६५७ = १८६)

हरि दास भलप्पन भजन बल, "बावन" ज्यों बढ्यौ "बावनो" ॥ अच्युत कुल सों दोष सुपनेहूं उर नहिं आनै । तिलक दाम अनुराग सबनि गुरु जन करि मानै ॥ सदन माहिं वैराग्य बिदेहिन कीसी भांती । रामचरण मकरंद रहति मनसा मद माती ॥ "जोगानंद" उजागर वंश करि, निसि

दिन हरि गुन गावनो। हरिदास भलप्पन भजन बल बावन ज्यौं बढयौ "बावनो" ॥ १३६ ॥
(२१४-१३६=७८)

वार्तिक तिलक

श्रीहरिभक्तों के भलप्पन (कृपा) से, तथा श्रीसीताराम भजन के बल से, श्रीबावन जी भी साधुत्त्व स्वरूप से श्री बावन भगवान के समान बढ़े। अच्युत गोत्री वैष्णवों में, दैव योग कोई दोष * हो भी तथापि आप स्वपने में भी उन दोषों को अपने हृदय में नहीं लाते, बरंच माला कंठी तिलक वेषमात्र धारण करनेवालों को अनुराग सहित गुरु-जन करके मानते थे। श्रीविदेह जी की नाईं, गृहमें रहते हुये ही परम वैराग्यमान थे।

श्रीराम चरण कमल के प्रेम मकरन्द से आपका मन रूपी भ्रमर मद मत्त रहा करता था। "श्रीयोगानन्द" जी के वंश को उजागर करके दिन रात श्रीबावन जी श्रीसीताराम गुण गान किया करते थे।

* (१) कामी साधुहि कृष्ण कहि लोभी बावन जानि।
क्रोधी को नरसिंह कहि नहीं भक्त की हानि ॥ १ ॥

(२) इस छप्पय के अर्थ करने में बहुतों ने हरिदास शब्द को ही भक्त का नाम माना है, और "बावन" शब्द के दो बेर होते हुए भी उसपर पूरा ध्यान नहीं दिया।

(२१०) श्रीपरशुराम जी ।

(६५८) मूल । छप्पै (८४३-६५८=१८५)

जंगली देस के लोग सब, "परसराम" किए पारषद ॥ ज्यों चंदन कौ पवन नीवँ पुनि चंदन करई । बहुत काल तम निबिड़ उदै दीपक ज्यों हरई ॥ श्रीभट पुनि हरि व्यास संत मारग अ-नुसरई । कथा कीरतन नेम रसन हरि गुण उच्च-रई ॥ गोबिन्द भक्ति गदरोग गति तिलक दाम सद वैद हद । जंगली देस के लोग सब, परसराम किए पारषद ॥ १३७ ॥ (२१४-१३७=७७)

वार्तिक तिलक ।

श्रीपरशुरामदेव जी ने अपने उपदेश से जंगली देशके लोगोंको भगवत् पार्षदों के समान कर दिया किस प्रकार कि जैसे दिव्य मलयागिर चन्दन का पवन नीम्ब के वृक्ष को चन्दन कर देता है; और जैसे बहुत काल के सघन अन्धकार को दीपक हर लेता है; इसी प्रकार जंगली लोगों का अज्ञान आपने हरलिया । "श्रीभट्ट जी" और "श्री हरि व्यास जी" के साधु मार्ग में आप भी चले; सदा नेम से भगवत् कथा नाम कीर्तन श्रीहरि गुण रसना से उच्चारण करते थे; जैसे रोगी को अनुपान युक्त रसायन औषध देकर सद्वैद्य निरोग कर देते हैं; इसी प्रकार श्रीपरशुराम जी ने गोविन्द भक्ति रसायन, माला तिलक अनुपान के साथ,

देकर पाप रोग को नाश कर दिया ॥

श्री "श्रीभट्ट" जी के श्रीहरिव्यासदेव शिष्य थे; जिनसे हरिवंशी (राधावल्लभी) हरिदासी, आदि, पांच शाखाएं निम्बार्क सम्पदा की चली हैं।

(छप्पै) तिलक है सत अस्नान तिलक ब्राह्मन सिर सोहै। तिलक बिना कछु करौ सबै फल निरफल जोहै ॥ तिलक तिया सिंगार तिलक नृप सीस लगावैं। तिलक वेद परमान तिलक त्रैलोक चढ़ावै ॥ तिलक तत्व जुग जुग सदा तिलक मिलै सिधि पाइए। परसराम ब्रह्मांड मै सुजस तिलक कौ गाइए ॥ १ ॥

दोहा—कथा सुनै नहिं कीरतन, बकै आपनी बाइ।
पापी मानुष परशुराम, कै ऊंघै, उठि जाइ ॥ १ ॥
श्रोता ऐसो चाहिये, जाके तन मन राम।
वक्ताहू हरि कौ भगत, जाके लोभ न काम ॥ २ ॥
साधु तहां ही संचरै, जहां धर्म की सीर।
सरवर सूखे परशुराम, हंस न बैठे तीर ॥ ३ ॥

(६५९) टीका। कवित्त (८४३—६५९=१८४)

राजसी महंत देखि, गयौ कोऊ अंत लैन, बोल्यौ "जू अनंत हरि संगे, माया टारियै"। चले संग वाके, त्यागि, पहिरि कुपीन अंग, बैठे गिरि कंदरामें लागी ठौर प्यारियै ॥ तहां बनिजारौ आय संपति चढ़ाय दई, दई और पालकी हूं, महिमा निहारियै ॥ जाय लपटायौ पाय, "भाव मैं न जान्यौं कछू, आन्यौं उर मांझ, आवै प्रान वार डारियै" ॥ ५२२ ॥ (६२९—५२२=१०७)

वार्तिक तिलक।

श्रीपरशुरामदेव जी को राजसी महंत देख, और उन के पे दोहे सुन, कोई परीक्षा लेनेको गया।

(दो०) "माया सगी न तन सगो, सगो न यह संसार।
परशुराम, या जीवको, सगा सो सिरजनहार॥१॥
कहते हैं करते नहीं, मुहके बड़े लबार।
कारो मुहड़ो होइगो, साईं के दरबार॥ २॥"

उसने ये दोहे पढ़कर कहा कि "आपने तो लिखा है कि 'इस जीव के केवल श्रीहरि सगे हैं माया नहीं सगी' इस्से माया को छोड़ दीजिये। आपने कहा "बहुत अच्छा" और केवल एक कौपीन पहन के उसके साथ चले। आके पर्वत के कन्दरा में बैठे वह ठौर आपको बहुत अच्छा लगा। प्रभुको स्मरण करने लगे।

इतने ही में एक बनिजारा (वैपारी) आकर बहुतसी सम्पत्ति और एक पालकी चरणों में चढ़ाके शिष्य हुआ वह परिक्षा करनेवाला साथ था आपकी महिमा देख, दौड़ चरणों में लपट कहने लगा कि "मैं आप का प्रभाव कुछ नहीं जानता था, मनमें और ही विचार किया, अब मेरे मन में ऐसा आता है कि आपके ऊपर प्राण नेवछावर कर दूं॥"

(२११) श्रीगदाधरभट्ट जी।

(६६०) मूल। छप्पै (८४२-६६० = १८२)

गुन निकर गदाधरभट्ट अति, सबहिन को लागै सुखद॥ सज्जन, सुहृद, सुशील, वचन आरजप्रति-

पालय। निर्मत्सर, निहकाम कृपा करुणाको आलय॥ अनन्य भजन दृढ़ करनि, धर्यो वपु भक्तनि काजै। परम धरम कौ सेतु, विदित वृंदावन गाजै॥ भागौत सुधा वरषै बदन, काहूकों नाहिन दुखद। गुन निकर "गदाधरभट्ट" अति, सबही को लागै सुखद॥ १३८ (२१४–१३८ = ७६)

वार्तिक तिलक।

शुभ साधु गणों के पुंज श्री "गदाधर भट्ट" जी सब को सुखदाता लगते थे। सज्जन, सुहृद, सुशील, श्रेष्ठों के वचनप्रतिपालक, निर्मत्सर, निःकाम, और कृपा करुणा के निधान थे। भगवद्भक्तों को अनन्य भजन दृढ़ कराने के लिये शरीर धारण किया। परमधर्म जो भगवद्धर्म उस के सेतु ही विख्यात थे। वृन्दावन में गर्जके अपने मुख से श्रीभागवत् रूपी अमृत की मेघ के सम वर्षा करते थे। और किसी को भी आप से दुःख नहीं पहुँचता था॥ भाषा के अत्युत्कृष्ट कवि थे। इनके विरक्तता की अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं॥

ये बंगाली नहीं थे, और बांदावाले भी नहीं थे; और, श्रीवल्लभाचार्य्य जी के शिष्य गदाधर मिश्र, दूसरही थे। "भट्ट गदाधर,, विद्या भजन प्रबीन। सरस कथा बानी मधुर, सुनि रुचि होत नवीन।"

(६६१) टीका। कवित्त (८४३–६५१ = १८२)

"स्याम रंग रंगी" पद सुनिकै, "गुसांईजीव" पत्र दै पठाये उभै साधु वेगि धाये हैं। "रैनी विन रंग कैसे चढ्यो"

अति सोच बढ्यौ, " कागद मै प्रेम मढ्यौ तहां लैके आये हैं॥ पुर ढिग कूप, तहां बैठे रसरूप, लगे पूछिवेकौ तिनही सों नाम लै बताये हैं ॥ " रहौ कौन ठौर, " " सिरमौर वृन्दावन धाम, " नाम सुनि मुरछा ह्वै गिरे प्रान पाये हैं ॥ ५२३ ॥
(६२९–५२३ = १०६)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीगदाधरभट्ट जी, प्रथम अपने घर ही में, " सखी हौं श्याम रंग रँगी । देख विकाय गई वह मूरति सूरति माँहि पगी । इत्यादि । " यह पद बनाया । वृन्दावन में उसीको श्रीजीवगोसांई जी सुनके ऐसे मोहित हुए कि एक पत्र लिखे कि " रैनी (रंगने वाले के स्थान) विनाहि आपको श्याम रंग कैसे चढ़गया ? मेरे मन में बड़ाही सोच है । ऐसा प्रेम मढ़ा हुआ पत्र दो साधुवों के हाथ आपके यहां भेजा वे लेकर उसी नगर के समीप आये; एक कूप के ऊपर रस रूप श्रीगदाधरभट्ट जी प्रभाती (दतूँन) कररहे थे, सो आप ही से वे पूछने लगे कि " गदाधरभट्ट जी इस ग्राम में कहां पर रहते हैं ? "

आपने पूछा कि " आप कहां रहते हैं ? " संतों ने उत्तर दिया कि " सिरमौर वृन्दावन धाम में " । ' श्रीवृन्दावन ' का नाम सुनते ही श्रीगदाधरभट्ट जी प्रेमसे मूर्छित हो गिर पड़े मानो प्राण निकल गये ॥

(६६२) टीका । कवित्त (८४३–६६२ = १८१)

काहू कही " भट्ट श्री गदाधर जू एई जानौ मानौ उही

पाती चाह फेरिकै जिवाए हैं। दियो पत्र, हाथ लियो, सीस सौं लगाय, चाय, बांचत ही, चले, वेगि वृन्दावन आये हैं॥ मिले श्रीगुसांईजू सों, आंखैं भरि आई नीर, सुधि न सरीर धरि धीर वही गाये हैं। पढ़े सब ग्रंथ, संग, नाना, कृष्ण कथा रंग रस की उमंग अंग अंग भाव छाए हैं॥ ५२४॥
(६२९—५२४ = १०५)

वार्तिक तिलक।

आपकी दशा देख उन संतों से किसीने कहा कि "यही गदाधरभट्ट जी ह।" तब उन संतों ने आप से कहा कि "हम आप के लिये पत्र लेकर आये हैं" सो सुनकर उठ बैठे, मानो उस पत्र की चाह ही ने आपको फिर के जिला लिया। पत्र दिया, आप हाथ मेंले शीश और नेत्रों में लगाकर प्रेमानन्द से पढ़ और वैष्णवों को शतकार कर, सीधे, वृन्दावन को चलही दिये।

श्रीवृन्दावन में आकर श्रीजीवगोसाई जी से मिले, नेत्रों में प्रेमाम्बु का प्रवाह चलने लगा, देह की दशा भूल गइ, फिर धैर्य्य धरके वहीपद गाने लगे। रहकर, संतसंग में उपासना के सब ग्रंथ पढ़, श्रीकृष्ण कथा कहनेलगे। आपके अंग अंग में भाव रसरंग की उमंग छागई। फिर आजन्म पर्यन्त धाम ही में रहे। इनकी कथा सुनकर कितने ही पर्यन्त लोग विरक्त हो गए।

(६६३) टीका। कवित्त (८४३-६६३ = १८०)

नाम हो कल्यानसिंघ जात रजपूत पूत, बैठ्यो आय,

कथा सों अमूत रंग लाग्यौ है । निपट निकट वास " धौ-रहरा " प्रकाश गांव, हास परिहास तज्यौ, तिया दुख पाग्यौ है ॥ जानी भट्ट संग सो, अनंग वास दूर भई, करौ लैकै नई आनि हियें काम जाग्यौ है । मांगत फिरत हुती जुबती औ गर्भवती, कही लै रुपैया वीस "नेकु कह्यौ राग्यौ है " ॥ ५२५ ॥ (६२९–५२५ = १०४)

वार्त्तिक तिलक ।

एक समय कल्यानसिंह नाम का रजपूत कथा में आ बैठा सुनते ही उसको लोकोत्तर प्रेम रंग लग गया । बहुत समीप ही " धौरहरा " ग्राम में रहता था; नित्य कथा सुनने से विषय विरक्त हो उनने नारी से हांस विलास तज दिया । स्त्री दुखित हुई और जान गई कि ' इस भट्ट जी की कथा सुनने से इनकी कामवासना छूट गई है ' ।

स्त्री ने कामवश हो विचार किया कि " मैं भट्ट की नई निन्दा कराऊं " । एक युवा स्त्री गर्भवती भीख मांगती फिरती थी उससे कहा कि " मुझ से बीस रुपये ले जो मैं कहूं सो कर " । उसने कहा " बहुत अच्छा " ॥

(६६४) टीका । कवित्त (८४३–६६४ = १७९)

गदाधरभट्ट जू की कथा में प्रकाश कहौ " अहो कृपा करी अब मेरी सुधि लीजियै " । दई लौंडी संग, लोभ रंग चित भंग किये, दिये लै बताय, बोली " मेरौ काम कीजियै " ॥ बोले आप " बैठियै जू जाप नित करौं हियै, पाप नहीं मेरौ भई दरसन दीजियै " ॥ श्रोता दुख पाय,

भाखैं " झूठी याहि मारि नाखैं, " सांची कहि राखैं, सुनि तन मन छीजिये ॥ ५२६ ॥ (६२९–२२६ = १०३)

वार्तिक तिलक।

उसने कहा जा गदाधरभट्ट जी की कथा में प्रकाश कर उन्ही से अच्छे प्रकार कह कि " मेरे ऊपर कृपा कर आपने गर्भवती किया तो अब मेरी सुधि लीजिये "। इस प्रकार सिखाकर बताने के लिये लौंड़ी संग कर दी। द्रव्य के लोभ से वह आकर उसी प्रकार बोली कि " महाराज! आपका दिया गर्भ पूरा हुआ; मुझे रहने को ठिकाना बताइये "। सुनके उस कलंक से आपको कुछ क्षोभ न हुआ, बरंच आपने कहा कि " मैं तो तेरा नित्य स्मरण करता था मेरा दोष नहीं तू कहां चली गई थी, भला आज दरशन दिया, बैठ जा "।

उस दुष्टा के वचन सुन श्रोता लोग कहने लगे कि यह झूठी बात कह रही है इसको हम मार डालेंगे "। आपने कहा कि " यह सत्य कहती है "। श्रोता लोग सुन तन मन से अति दुखी हुये ॥

(६६५) टीका। कवित्त (८४२–६६५ = १७८)

फटि जाय भूमि तौ समाय जाय श्रोता कहैं, बहैं दृग नीर ह्वै अधीर सुधि गई है। " राधिकावल्लभदास " प्रगट प्रकाश भास, भयौ दुख रास, सुनि सो बुलाय लई है ॥ " सांच कहि दीजै नहीं अभी जीव लीजै, " डरि, सबै कहि दियौ, सुख लियौ संज्ञा भई है ॥ काढ़ि तरवार तिय

मारिवे कल्यान गयौ, दयौ परबोध " हमै करी दया नई है" ॥ ५२७ ॥ (६२९–५२७ = १०२)

वार्तिक तिलक।

श्रोताजन अति दुखी होकर आपस में कहने लगे कि जो भूमि फट जाती हम सब समा जाते तो भला था इस दुष्टा के वचन न सुनते। सब के नेत्रों से जल बहने लगा अधीरता से देह सुधि भूल गई। तब, एक संत राधिका-वल्लभदास जी जो बड़े बुद्धिमान थे, वे उसको समीप में बुलाके कहने लगे कि " सच सच बता तू क्यों ऐसे वचन बोलती है? झूठ कहेगी तो अभी तेरे प्राण लेलेवेंगे"। तब डरके उसने यथार्थ सब बात कह दी। सच्ची बात खुल गई। सुनके सब श्रोताओं को सुख और संज्ञा (सुधि) हुई। कल्यानसिंह जी अपनी स्त्री की दुष्टता सुनते ही खड्ग निकाल उसका माथा काटने को दौड़े, भट्ट जी ने बहुत प्रकार से प्रबोध कर निवारन किया और कहने लगे कि " उसने मुझ पर नवीन दया की है" ॥

(६६६) टीका। कवित्त (८४३–६६६ = १७७)

रहैं काहू देस मैं महंत, आये कथा मांझ, आगें लै बैठाये देखैं सबै साधु भींजे हैं। " मेरे अश्रुपात क्योंन होत?" सोच सोत परे, करे लै उपाय दै लगाय मिर्च खीजे हैं ॥ संत एक जानिकै जताय दई भट्टजूको, गए उठि सब जब, मिलि अति रीझे हैं ॥ " ऐसी चाह होय मेरे" रोयकै पुकारि कही चली जलधार नैन प्रेम आप पीजे हैं ॥ ५२८ ॥ (६२९–५२८ = १०१)

वार्त्तिक तिलक।

एक समय की वार्ता है कि किसी देशके एक महंत कथा में आये; सब ने आदर से आगे बैठाया उनने देखा कि सब संतो के नेत्रों से प्रेमाम्बुकी धारा चल रही है; "मेरे आंसू क्यों नहीं चलते?" इस सोच के प्रवाह में पड़गये। दूसरे दिन मिर्च पीसके लेते आये, खीझके, युक्ति से नेत्रों में लगाली, अश्रुपात होनेलगे। एक संत ने जानके भट्टजी से कहदिया।

जब सब श्रोता उठगये तब भट्ट जी अति प्रसन्न हो उनको छाती से लगा रोकर कहने लगे कि ऐसी रोने की मेरे भी चाह हो, तो भली है। आपके नेत्रों से जल की धारा चलने लगी। महंत के कृत्रिम प्रेम पर अति प्रसन्न हुये। आप के हृदय में लगाने से महंत के नित्य स्वतः अश्रुपात होने लगे।

(६६७) टीका। कवित्त (८४३-६६७=१७६)

आयो एक चोर, घर संपति बटोरि, गांठि बांधी; लै मरोरि किहूं, उठै नाहि भारी है। आयकै उठाय दई, देखी इन रीति नई, पूछ्यौ नाम, प्रीति भई, भूलो मैं बिचारी है॥ बोले आप लै पधारौ, होत ही सवारौ आवै और दस गुणी मेरें तेरी यह ज्यारी है। प्राननिकौं आगें धरो आनि कै उपाय करौ रहे समझाय भयौ शिष्य चोरी टारी है॥ ॥ ५२९॥ (६२९-५२९=१००)

वार्तिक तिलक।

किसी रात को एक चोर आकर, घर की सब सम्पति लेकर गठरी बांधी; परन्तु गठरी भारी होगई किसी प्रकार उठती न थी; भट्ट जी ने आकर चुपचाप उठा दी। चोर ने आपकी नवीन रीति देख, पूछा कि "आपका नाम क्या है?" आपने नाम बताया; सुनते ही चोर के हृदय में प्रीति प्रगट हुई, और विचार करने लगा कि "ऐसे महात्मा के यहां चोरी करनी मेरी बड़ी भूल है"। आपने कहा "लेकर पधारो, तुम्हारी तो यही जीविका है, और मुझे तो प्रभात होतेही इससे दशगुनी लोग दे जाँयगे"। चोर चरणों में पड़कर विनय करने लगा कि "मैं अब धन कैसे लेजाऊं? मेरी इच्छा होती है कि आपके ऊपर अपना प्राण न्यवछावर कर दूं"। आप समझाने लगे कि तुमने प्राणों का भय छोड़ उपाय और परिश्रम किया है, ले जाओ"। निदान चोर चोरी छोड़, आपका शिष्य हो गया। भक्ति में तत्पर हो संसार से मुक्त हुआ।

(६६८) टीका। कवित्त (८४३-६६८=१७५)

प्रभु की टहल निज करनि करत आप, भक्ति कौ प्रताप जानै भागवत गाई है। देत हुते चौका, कोऊ शिष्य बहु भेट ल्यायौ, दूरहीं ते देखि, दास आयौ सो जनाई है॥ "धोवौ हाथ, बैठौ आप," सुनिकै रिसाय उठे, सेवाही में चाय वाकों खीझि समझाई है। हिये हित रासि जग आसकों विनास कियौ, पियौ प्रेम रस; ताकी बात लै दिखाई है॥ ५३०॥ (६२९-५३०=९९)

वार्त्तिक तिलक।

प्रभु की परिचर्य्या टहल नित्य आप अपने ही हाथों से किया करते थे, क्योंकि भक्ति की रीति और प्रताप जिस प्रकार भागवत् आदि ग्रंथों में कहा गया है सो आप भले प्रकार जानते थे। एक दिन आप पूजा के लिये चौका लगारहे थे, उसी समय एक शिष्य बहुतसा धन भेंट लिये आया; आपका दास उसको देख, आकर, कहने लगा कि "अमुक सेवक चला आता है, आप हाथ धोकर बैठ जाइये। चौका मैं लगा दूंगा"॥

आपने सुनकर खीजकर उस सेवक को शिक्षा दी कि "मैं अपना भजन कैंकर्य छोड़ किसलिये बैठ जाऊं? ऐसा कौनसा बड़ा कार्य्य है? सेवक आता है तो मेरी टहल देख और भी प्रभुकी सेवा में तत्पर होगा"।

इत्यादिक, श्रीगदाधरभट्ट जी के अलौकिक चरित्र हैं। आप के हृदय में सबका हित ही बसता था। जगत की आसा को सर्वथा नाश कर प्रेमरस पान किया। सो बात मैंने आप के चरित्र ही वर्णन कर दिखा दी।

आप भी, भाग्यमान नृपति "अकबर" के समय में विराजमान थे॥

(६६९) मूल। छप्पै (८४३-६६९ = १७४)

चरण शरण चारण भगत, हरि गायक एता हुवा॥ चौमुख, चौरा, चंडै, जगत ईश्वर गुण जानै।

करमानन्दं अरु कोल्हं, अल्हं, अक्षर परवाने ॥ माधौ मथुरा मध्य, साधु, जीवानंद, सींवा । दूदी नारायणदास[12], नाममांड़न[13] नतग्रीवा ॥ चौरासी, रूपक चतुर वरनत बानी, जूजुवौ ॥ चरण शरण चारण भगत हरि गायक एता हुवा ॥ १३९ ॥ २१४-१३९=७५)

वार्तिक तिलक ।

श्रीहरि जी के चरण शरण होकर भगवत गुण गानेवाले चारण (कथक) भक्त इतने हुए ।

१ श्रीचौमुख जी
२ श्रीचौड़ा जी
३ श्रीचंड जी
ये जगत में ईश्वरही के गुण गाना जानते थे ।
४ श्रीकरमानन्द जी
५ श्रीकोल्ह जी
६ श्रीअल्ह जी
इन्होंने भगवत पद रचना में प्रमाणिक अक्षर रक्खे।
७ श्रीमाधो जी
श्री मथुरा में ।
८ श्रीसाधू जी
९ श्रीजीवानन्द जी
१० श्रीसीवा जी
११ श्रीदूदा जी
१२ श्रीनारायणदास जी
१३ श्रीमांड़न जी
प्रभु के चरणों में कण्ठ नवाने वाले ।
१४ श्रीचौरासी जी
रूपक देखाने में चतुर और वर्णन की वाणी में प्रवीण।
१५ श्रीजुजुवा जी

नामों का (उनके विशेषणों से अलग करके) ठीक पता लगाना अत्यन्त ही कठिन (वरन सच तो यह कि असम्भव) है ।

(२१२) श्रीकरमानंद जी।

(६७०) टीका। कवित्त (८४३-६७० = १७३)

करमानंद चारन की बानी की उचारन मै, दारुन जो हियौ होय, सोऊ पिघलाइयै। दियौ गृह त्यागि, हरि सेवा अनुराग भरे, बटुवा सु ग्रीव हाथ छरी पधरायये॥ काहू ठौर जाय गाड़ि, वहीं पधराये वापै ल्याए उर प्रभु, भूलि आये! कहां पाइयै? फेर चाह भई, दई श्याम को जताय बात, लई मंगवाय, देखि मति लै भिंजाइयै॥ ५३१॥ (६२९-५३१ = ९८)

वार्तिक तिलक।

श्रीकर्मानन्द जी चारण (गायक) की वाणी का उच्चारण गान सुन, कैसाही कठोर हृदय होय, पर कोमल ही हो जाता था। आप गृह त्यागके तीर्थादि दर्शन के लिये विचरने लगे, श्रीहरि पूजा सेवा के अनुराग में भरे, ठाकुर सालग्राम जी का बटुवा कंठ में, और हाथ में एक कुबरी छड़ी रखते थे; उसी को गाड़कर प्रभु का बटुआ झूला सा उसमें लटका देते थे।

किसी एक ठिकाने गाड़कर श्रीठाकुर जी को पधराया, चलते समय प्रभु को तो लेलिया पर छड़ी उसी ठिकाने भूल आये! फिर दूसरे ठिकाने आकर देखैं तो प्रभुके विराजने के लिये छड़ी नहीं! तब तो श्रीश्यामसुन्दर जी से विनय करने लगे कि "प्रभो! उस समय मुझे आपने कृपाकर सुधि न करादी! अब मैं आपके विराजने के लिये छड़ी कहां पाऊं? प्रभु ने आपकी सच्ची सुन्दर प्रार्थना सुन प्रसन्न हो वहांही छड़ी ऊपर से

गिरा दी। आपने देखकर छड़ी धन्यवाद पूर्वक ले, प्रेम से भीग के उसी में प्रभु को पधरा दिया ।

(दोहा) प्रेम मग्न कछु समय रहि, पुनि मन बाहिर कीन्ह ।
तब चारण निज नियम सों, सेवै पूजै लीन्ह ॥

(२१३ । २१४) श्रीकोल्ह जी, श्रीअल्हू जी ।

(६७१) टीका । कवित्त (८४३-६७१ = १७२)

कोल्ह अल्हू भाई दोऊ, कथा सुखदाई सुनौ, पहिलौ विरक्त, मद मास नहीं खात है। हरि ही के रूप गुण वाणी में उचार करै, धरै भक्ति भाव हिये, ताकी यह बात है ॥ दूसरौ अनुज, जानौ खाय सब उन मानौ, नृपही कों गावै प्रभु कभूं गाय जात है। बड़े के अधीन रहै. सोई करै जोई कहै, ईश करि चहै, आप दीनता मै मात है ॥ ५३२ ॥
(६२९-५३२ = ९७)

वार्तिक तिलक ।

जातिके चारन जेठे श्रीकोल्ह जी और छोटे श्रीअल्हू जी. दोनों भाइयों की सुखदाई कथा सुनिये । श्रीकोल्ह जी विषय से विरक्त मद मांसादि तजके श्रीहरि के नाम रूप गुण वाणी से उच्चारण करते गाते भक्ति भाव हृदय में सदैव धारण करते थे। दूसरे आपके छोटे भाई अल्हू जी सब खाते पीते सदा राजा ही का गुण गान करते, कभी कभी श्रीप्रभु का भी यश गान करलेते थे । परन्तु अपने बड़े भाई के आधीन आज्ञाकारी रहते, ईश्वर के समान मानते, आप दीनता में लीन रहते थे।

(६७२) टीका । कवित्त (८४३–६७२ = १७१)

बड़े आप कही चलौ द्वारिका निहारैं सही, मिथ्या जग भोग, यामै आयु ही विहात है । आज्ञा के अधीन चल्यौ, आये पुर, लीन भये, नये चोज मंदिर मै, सुनौ कान बात है ॥ कोल्ह नै सुनाये सब जे जे नाना छन्द गाये, पाछे अल्हू दोय चार कहे सकुचात है । भऱ्यो ही "हुं" कारौ, प्रभु कही माला गरैं डारौ, ल्याए पहिरावैं, कह्यौ "मेरौ बड़ौ भ्रात है" ॥ ५३३ ॥ (६२९–५३३ = ९६)

वार्त्तिक तिलक ।

एक दिवस कोल्ह जी ने अल्हू जी से कहा कि "चलो द्वारिकाधीश जी के दरशन करैं क्योंकि यह संसारी भोग सब झूठा है, इसमें पड़े रहने से वृथा आयु चला जाता है । श्रीअल्हू जी बड़े भाई के आज्ञाकारी तो थे ही, साथ २ चल दिये; दोनों भाई द्वारिकापुरी में आ, स्नानादि कर, प्रभु के मंदिर में आये । सो वहां की नवीन चमत्कार युक्त वार्ता कान दे के सुनिये ।

प्रथम श्रीकोल्ह जी ने जो जो छन्द पदों में प्रभु के यश रचे थे सो सब सुनाये; पीछे श्रीअल्हू जी ने भी दीनता ग्लानि संकोच युक्त दो चार पद सुनाये । इनके पद सुनते ही प्रभु "हुं"कारी देते थे और अपनी प्रसादी माला देने की आज्ञा दी । पुजारी माला पहिराने को लाये, श्रीअल्हू जी ने कहा कि मेरे बड़े भाई जी को माला दीजिये, मैं माला पाने का पात्र नहीं हूं ।

(६७३) टीका । कवित्त (८४३-६७३ = १७०)

दयौ पै न याहि दयौ बड़ौ अपमान भयौ, गयौ बूड्यो सागर मै, दुखको न पार है। बूड़तहीं आगे भूमि पाई, चल्यौ झूमि प्रीति, सो अनीत भूलै नाहिं मानौ तरवार है। सौंहीं आये लैन हरिजन, मन चैन झिल्यौ, मिल्यौ कृष्ण आय, पायौ अति सुखसार है। बैठे जब भोजन कों दई उभै पातर लै दूसरी जू कैसी कही वही भाई प्याग है ॥ ५३४ ॥ (६२९-५३४ = ९५)

वार्तिक तिलक

पुजारी ने उत्तर दिया कि " बड़े भाई को तो प्रभु की आज्ञा ही नहीं, कैसे दूं तुम्हारे ही लिये आज्ञा है; " और श्रीअल्हू जी के गले में माला डाल दी। तब कोल्ह अपना अति अपमान जान अति दुखी होकर जा समुद्र में डूब गये। डूबते ही नीचे भूमि मिल गई, तब प्रीति पूर्वक आगे को चल दिये; परन्तु माला न पाने का अपमान भूलता नहीं। खड्ग लगने कासा दुख होरहा। उधर से हरिपार्षद आके लिवा चले तब मन में सुख हुआ और आगे जा के श्रीकृष्णचन्द्र जी का दरशन प्रणाम कर अति आनन्द को प्राप्त हुये।

जब प्रसाद लेने को बैठे तब प्रभुकी आज्ञा से दो पत्रों में प्रसाद पूर्ण कर पार्षदों ने दिया। श्रीकोल्ह जी ने पूछा कि दूसरा पारस किस के लिये है ? आज्ञा हुई कि "तुम्हारा छोटा भाई जो हमारा प्यारा है, उसके लिये लेते जाना।"

(६७४) टीका । कवित्त (८४३-६७४ = १६९)

सबै विष भयौ, दुख गयौ सोई हुयो नयो, दयौ परमोध वाकी बात सुनि लीजियै। " तेरौ छोटौ भाई, मेरौ भक्त सुखदाई, " ताकी कथा लै चलाई जामैं आप ही सों भीजियै ॥ " प्रथम जनम मांझ बड़ौ राजपुत्र भयौ, गयौ गृह त्यागि सदा मोसो मति भीजियै । आयौ वन, कोऊ भूप संग राग रंग रूप, देखि चाह भई, देह दई भोग कीजियै ॥ ५३५ ॥ (६२९-५३५ = ९४)

वार्तिक तिलक ।

सगुण उपासक भक्तों की निराली विचित्र दशा सुनिये, प्रभुके वचन सुनते ही कोल्ह जी का जो दुख भूल गया था सोई फिर नवीन हो आया अर्थात् मंदिर में मुझे माला न दी उसको दी, और यहां वह नहीं है तौ भी प्रसाद दिये।

प्रभु इनकी दशा देख उसके प्रथम जन्म की कथा कह के प्रबोध करने लगे जिस्में ये प्रसन्न हो जायँ। आप बोले कि " उसकी बात सुनो, तुम्हारा छोटा भाई मेरा सुखदाई भक्त प्रथम जन्म में बड़े राजा का पुत्र था, सो गृह तजि वन में जाके मुझ में मन लगाके भजन करता था, वहां एक राजा शिकार खेलने आया एक दिन रह गया उसका भोग विलास देख इसको भी चाह हुई इसीसे हमने देह दिया कि जिस्में भोग कर के वासना से मुक्त हो मुझे प्राप्त होवै ॥ "

(६७५) टीका । कवित्त (८४३-६७५=१६८)

तेरे ई बियोग अन्न जल सब त्यागि दियौ जियौ नहीं

जात वापै वेगि सुधि लीजियै। हाथ पै प्रसाद दीनो, आय घर चीन्ह लीनों, सुपनौ सो गयौ वीति, प्रीति वातों कीजियै ॥ द्वारिका को संग सुनि आवतही आगे चल्यौ मिल्यौ भूमि पर दृग भरि वहै दीजियै ॥ कही सब बात स्याम धाम तज्यौ ताही छिन कर्यौ बन वास दोऊ अति मति भीजियै ॥ ५३६ ॥ (६२९–५३६ = ९३)

वार्त्तिक तिलक।

"अब वह तुम्हारे वियोग से, अन्न जल त्याग कर, मरणप्राय होरहा है जाओ शीघ्र उसकी सुधि लो"। प्रभु जी ने हाथ में प्रसाद दिया सोई चिन्ह लेकर चले। बाहर आमये और शंख चक्रादि चिन्ह लेकर, श्रीअल्हू जी को यहां न पाकर घरको चले। प्रथम अपमान की वार्त्ता स्वप्ने सरीखे भूल, उससे अति प्रीति युक्त हुये।

अपने गृह में पहुंचे। श्रीअल्हू जी ने सुना कि कोल्ह जो समुद्र में डूबगए थे, सो दिव्य द्वारिका में श्रीकृष्ण दर्शन सङ्ग पाके, चले आते हैं; तब आगे आये नेत्रों में जल भर भूमिपर साष्टांग प्रणाम किया, श्रीकोल्ह जी ने हृदय में लगाकर, वही प्रसाद दे, श्रीकृष्णचन्द्र जी का कहा हुआ वृत्तान्त सुनाया। सुनते ही उसी क्षण घर को त्याग बन में जा, दोनों भाई सप्रेम भजन कर अन्तमें प्रभु को प्राप्त हुये ॥

(२१५) श्रीनारायणदास जी।

(६७६) टीका। कवित्त (८४३–६७६ = १६७)

अल्हू ही के वंश मे प्रसंस याहि जानि लेव, बड़ो और

भाई छोटे श्रीनारायणदास है। दीरघ कमाऊ, लघु उपज्यौ उड़ाऊ, भाभी दियौ सीरौ भोजन, लै भयौ दुख रास है॥ "देवौ मोकों तातौ करि," बोली वह क्रोध भरि यहू जा हुँ कारौ भर, "बाबे ?" कियौ हांस है। गयौ गृह त्यागि, हरि पागि कर्‍यौ वैसे ही जू, भक्ति वस स्याम, कह्यौ प्रगट प्रकाश है॥ ५३७॥ (६२९-५३७=९२)

वार्तिक तिलक।

चारन श्रीनारायणदास जी भी अल्हू जी ही के वंश में प्रशंसनीय हुये। इनके एक बड़ा भाई धन कमानेवाला था। आप छोटे थे धन उड़ाते थे कमाते नहीं।

एक दिन भौजाई ने बासी भोजन खाने को दिया, आप को बड़ा दुख हुआ। तब बोले "मुझे अभी भोजन बना कर दो।" तब भाभी क्रोध कर हुँकार भर के, बोली मार कर कहने लगी, "क्या तू भगवतभक्त बाबा अल्हू जी है कि तेरी आज्ञानुसार सेवा करूं ?" ऐसा वचन सुन नारायण दास जी गृहको तज, प्रेम में पग, अपने बावा के समान श्रीहरि भक्ति की। प्रभुने कृपा कर प्रगट दरसन दे, कृत्यकृत किया॥

(२१६) श्रीपृथ्वीराज जी।

(६७७) मूल। छप्पै (८४३-६७७=१६६)

नरदेव उभै भाषा निपुन, "पृथीराज" कबि-राज हुव॥ सवैया, गीत, श्लोक, वेलि, दोहा, गुन

नवरस । पिंगल काव्य प्रमान बिबिधि बिधि गायौ हरि जस ॥ पर दुख विदुख, श्लाघ्य वचन, रचना जु बिचारै । अर्थ वित्त निर्मोल सबै सारँग उर धारै ॥ रुक्मिनी लता वरनन अनूप, वागीश वदन कल्यान सुव ॥ नरदेव उभै भाषा निपुन, "पृथीराज" कबिराज हुव ॥ १४० ॥ (२१४-१४० = ७४)

वार्तिक तिलक ।

बीकानेर के राजा श्रीपृथीराज जी, देववाणी (संस्कृत) तथा प्राकृत भाषा (हिन्दी काव्य), दोनों ही में बड़े प्रवीण कविराज हुये । सवैया, गीत,-पद,-श्लोक, वेली, दोहा, आदि छन्दों से नवरसों और गुणगणों से युक्त, पिंगल काव्य के प्रमाण सहित, विविध प्रकार से श्रीहरि-सुयश आपने गान किया । दूसरे का दुख जाननेवाले और यथा शक्ति निवारन करनेवाले थे, प्रशंसनीय वचन रचना विचार कर, और अर्थ वित्त निर्मोल सब का सारांश सारंग (भँवर) की नाईं, हृदय में ग्रहण करते थे । "रुक्मिणी-लता" नामक ग्रंथ अति अनूप ऐसा वरनन किया कि मानों मुख में सरस्वती बैठी थीं, ऐसे "श्रीकल्यानसिंह" जी के पुत्र पृथीराज हुये ॥

(६७८) टीका । कवित्त (८४३-६७८ = १६५)

मारवार देस बीकानेर कौ नरेस बड़ौ, "पृथीराज" नाम भक्तराज कबिराज है । सेवा अनुराग, और बिबै बैराग

ऐसौ, रानी पहिचानी नाहिं मानो देखी आज है ॥ गयौ ही बिदेस, तहां मानसी प्रवेस कियौ, हियौ नहीं छुवै ! कैसे सरै मन काज है? । बीते दिन तीन प्रभु मंदिर न दीठ परे ! पाछै, हरि देखि, भयौ सुख कौ समाज है ॥ ५३८ ॥

(६२९--५३८ = ९१)

वार्तिक तिलक ।

माड़वार देश बीकानेर नगर के राजा श्रीपृथीराज जी, श्रीकल्यानसिंह जी के पुत्र, बड़े भक्तराज और कविराज थे । प्रभु की सेवा में अनुराग और विषय से विराग ऐसा था कि रानी को पहिचाना नहीं; मानो आज ही देखी है ।

आप अपने गृहसे विदेश गये थे वहां जो बीकानेर के मंदिर में प्रभु विराजे थे उन्हीं की मानसी सेवा किया करते थे । एक दिन मनसे उस मंदिर में प्रवेस किया, श्री प्रभु के मंगल विग्रह के दर्शन स्पर्श नहीं हुए ! तब कैसे मानसी सेवा कार्य्य हो सके ? इसी प्रकार तीन दिन बीत गये मंदिर में प्रभु के दर्शन न हुए; पीछे चौथे दिन से मानसी में प्रभु दिखाने लगे । तब मानसी सेवा में बड़ा सुख हुआ ॥

(६७९) टीका । कवित्त (८४३-६७९ = १६४)

लिखिकै पठायौ देस, सुन्दर संदेस यह " मंदिर न देखे हरि बीते दिन तीन है । लिख्यौ आयौ सांच बांचि अतिही प्रसन्न भए लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रवीन है ॥ सुनौ एक और यों प्रतिज्ञा करी हिये धरी " मथुरा सरीर त्याग

करैं " रस लीन है । पृथीपति जानिकै मुहीम दई काबुल की; बल अधिकाई, नहीं काल के अधीन है ॥ ५३९ ॥ (६२९–५३९ = ९०)

"काबुल" = کابل = देश विशेष । "मुहिम" = مہم = कठिन चढ़ाई ।

वार्तिक तिलक ।

राजा ने पत्र में सुन्दर संदेस लिख देशको सांढ़नी दौड़ाई कि " मैंने तीन दिन बीते श्री हरि जी को मंदिर में नहीं देखा ! क्या हेतु है ? " यहां से लिखगया कि "मंदिर को सुधारने के लिये काम लगा था, इससे तीन दिन प्रभु बाहर विराजे थे " यह सत्य बात जान, राजा जी अति प्रसन्न हुये ।

एक बात और सुनिये भक्ति रसलीन राजा ने यह प्रतिज्ञा की " कि मैं हरि कृपा से मथुरा जी में शरीर त्याग करूंगा " ऐसा दृढ़ हृदय में रक्खे थे । कहीं इस वृत्तान्त को बादशाह ने सुनकर द्वेष वश आपको काबुल की लड़ाई में नियोजित कर दिया । राजा और लोगों की नाईं कालके आधीन नहीं थे, इस्से आपको देह में बल अधिक ही बना रहा, और जीवन की अवधि भी हरि कृपा से ज्ञात होगई ॥

(६८०) टीका । कवित्त (८४३–६८० = १६३)

जीवनि अवधि रहै निपट अलप दिन, कलप समान बीतै पलन विहात है । आगम जनाय दियौ, चाहैं इन्हैं साचौ कियौ, लियौ भक्ति भाव जाके छायौ गात गात है ॥ चल्यौ चढ़ि सांडनी पै लई मधुपुरी आनि, करिकै अस्नान

प्रान तजे, सुनी बात है । जै जै धुनि भई व्यापि गई चहूं ओर अहो; भूपति चकोर जस चंद दिन रात है ॥ ५४० ॥ (६२९—५४० = ८९)

वार्त्तिक तिलक ।

आपके जीवन की अवधि बहुत ही थोड़े दिन रह गई इससे पल पल कल्प समान बीतने लगे । प्रभु जी सच्चा किया चाहते थे इसलिये आगम जना दिया । आपके भक्ति भाव तो सर्वांग में पूर्ण था ही, उसी क्षण सांढ़नी पर चढ़ चले; श्री मथुराजी में आके विश्रान्त घाट स्नान कर, पद्मासन से बैठे प्रभु का ध्यान धर, प्राण त्याग कर दिये सब भक्तों ने जय जय कार धुनि की और यह कीर्ति चारो ओर छागई ।

"श्रीपृथीराज के यश चन्द्रमा को बादशाह चकोर सरीषा चितै रहा था," यह वार्ता हमने श्रवण की है ॥

एक और वार्त्ता सुनने योग्य है कि एक समय एक जंगल में श्रीपृथीराज जी तथा आपकी सेना को रहजाना पड़ा । भक्तवत्सल श्रीभगवत् ने सबको सुख देने के लिये एक नगर बसा दिया जिससे सेना सुखी हुई, राजा ने हरि कृपा के लिये अनेक धन्यवाद किये ॥

(२१७) श्रीसींवां जी ।

(६८१) मूल । छप्पै (८४३—६८१ = १६२)

द्वारिका देखि पालंटती अचढ़ सींवैं कीधी

अटल ॥ असुर अजीज अनीति अगिनि मै हरि पुर कीधौ । सांगन सुत नै सादराय रनछोरै दीधौ ॥ धरा धाम धन काज मरन वीजाहूं माँडै ॥ कमधुज कुट कै हुवौ चौक चतुरभुजनी चांडै ॥ वाढै लवाढ कीवी कटक चांद नाम चांडै सवल । द्वारिका देखि पालंटती अचढ़ सीवै कीधी अटल ॥ ॥ १४१ ॥ (२१४–१४१ = ७३)

(६८२) टीका । कबित्त (८४३–६८२ = १६१)

कावा पति, सीवा, सुत सांगन कौ, प्यारौ हरि, द्वारावति ईश, यों पुकारैं रक्षा कीजियै । सदा भगवान आप भक्त प्रतिपाल करैं करौ प्रतिपाल मेरौ सुनि मति भीजियै ॥ तुरक अजीज नाम धामकों लगाई आगि लई वाग घोरन की आए टूक कीजियै । दुष्ट सब मारे प्रभु कष्टते उवारे निज प्रान वारि डारे यह नयौ रस पीजियै ॥ ५४१ ॥ (६२९–५४१ = ८८)

वार्तिक तिलक ।

एक समय, स्वयं श्रीद्वारिकाधीश रणछोर जी ने, अपने परम प्रिय भक्त, श्री "सींवां" जी, "सांगन" जी के पुत्र, 'कावा' जाति के लोगों के स्वामी (राजा) को, (जाके, स्वरूप धर, दर्शन दे) सादर यों पुकारा कि "हे भक्त ! हे बीर ! मेरी तथा मेरी पुरी की रक्षा कीजिये, "अजीज खां" असुर (तुर्क) ने, मेरी पुरी द्वारावती

को, अनीति दुष्टता से अग्निमय करदिया है"।

प्रभु का पुकार सुन, श्रीसींवां जी ने विचार किया कि 'जो भगवान स्वयं सब भक्तों का सदैव प्रतिपाल करते हैं, सो दयालु मुझ दीन को अपने धाम सहित अपनी रक्षा करने के लिये आज्ञा दे रहे हैं,' इस्से श्रीसींवां जी की मति प्रेम से भीग गई।

बहुत ही शीघ्र, श्रीसींवां जी ने, शस्त्र ग्रहण कर घोड़े पर चढ़, थोड़ी सी सेना साथ ले, धावा किया। श्रीद्वारिका पुरी को अग्नि से क्षार होते देख, रक्षा की। अज़ीज़खां के आधीन जो बादशाही फ़ौज थी, श्रीसींवां जी ने उस्से भारी मार काट मँचा दी। सब सेना समेत दुष्ट अज़ीज़-खां को काटडाला, जहन्नुम (यमपुर) भेज दिया। दूसरे लोग तो अपनी भूमि गृह धन इत्यादिक के लिये युद्ध करके मर जाते हैं, पर ये (श्रीसींवां जी) श्रीचतुर्भुज प्रभु के निमित्त, चौक में, अति तीक्ष्ण युद्ध करके काम आए, अपने प्राण न्यवछावर करदिये। धाम तथा धामी को कष्ट से छुड़ाया। मुक्त हो श्रीसींवां जी परधाम में जा विराजे। इस नवीन आत्मसमर्पण भक्तिरूपी रस को पान कर जगत में यश विस्तार कर गए। इस रस का आनन्द लीजिये॥ भक्तसुखद भक्तयशवर्द्धक प्रभु, नए नए अपूर्व ढंग से चमत्कृत चरित्र करके अपने भक्तों को विलक्षण बड़ाई और आनन्द देते हैं। कृपाकी जय॥

☛ इस (१४१ वें) मूल में, बहुतेरे शब्दों के अर्थ, तथा "कम-

ध्वज " वाली वार्ता, इस दीन की समझ में नहीं आई ! विज्ञ महात्मा कृपाकर इसको सुधार लेंगे ।

(२१८) श्रीमती रत्नावती जी ।

(६८३) मूल । छप्पै (८४३–६८३ = १६०)

पृथीराज नृप कुल बधू, भक्तभूप " रतनावती " ॥
कथा कीरतन प्रीति भीर भक्तनि की भावै ।
महा महौछौ मुदित नित्य नँदलाल लड़ावै ॥
मुकुंद चरण चिंतवन भक्ति महिमा ध्वजधारी ।
पति पर लोभ न कियौ टेक अपनी नहिं टारी ॥
भल पन सबै विशेष ही आमेर सदन सुनखा-
जिती । पृथ्वीराज नृप कुल बधू, भक्तभूप " रत
नावती " ॥ १४२ ॥ (२१४–१४२ = ७२)

रत्नावती सुनखाजीत की कन्या है ।

वार्त्तिक तिलक ।

आमेर के राजा परम भक्त श्रीपृथ्वीराज जी के कुल की बधू श्री " रत्नावती " जी श्रीहरि भक्तों में भूप हुई । सत्संग, कथा, कीर्तन में अति प्रीतिवती हुई; और हरि भक्तों की भीड़ आपको परम प्यारी लगती थी । आनन्द से महा महोत्सव किया करतीं; नन्दलाल जी को नित्य लाड़ लड़ाती थीं । मुकुन्द चरण चिन्तवन में तत्पर हो आपने भक्ति की महिमा की ध्वजा गाड़दी । लोकलाज और रानीपने को तजदिया; भजन सतसंग की अपनी टेक नहीं त्याग की; पति पर लोभ

नहीं किया, किन्तु उसको भक्ति विमुख जान उससे अपना चित्त हटा लिया। आमेर सदन वासिनी "सुनखाजीत" जी की सुता के भले पण, (प्रतिज्ञा) तथा भलप्पन, (भलाई) साधुता, का सब सज्जन लोग विशेष वर्णन करते हैं, ऐसी "श्रीरत्नावती जी" हुई ॥

(६८४) टीका कवित्त (८४३-६८४ = १५९)

मानसिंघ राजा ताकौ छोटो भाई माधौसिंघ, ताकी जानौ तिया, जाकी बात लै बखानियै। ढिग जो खवासिनि सौं स्वासनि भरत नाम*रटति जटित प्रेम रानी उर आनियै॥ नवलकिशोर कभूं नन्द के किसोर कभूं बृन्दावन चन्द कहि आंखै भरि पानियै। सुनत बिकल भई सुनिवेकी चाह भई रीति यह नई कछु प्रीति पहिचानियै॥५४२॥(६२९-५४२ = ८७)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीमती "रत्नावती जी" राजा "मानसिंह" के छोटे भाई "माधवसिंह" की रानी थीं, जिनकी वार्ता वर्णन होती है। आपके समीप जो दासी थी सो हरिभक्ता, सानुराग स्वास भरती हुई नाम रटा करती थी।

सुनके रानी के हृदय में भी कुछ प्रेम आजाता था। एक दिन, यह दासी "नवलकिशोर, नन्दकिशोर, बृन्दावन चन्द," इत्यादि नाम सप्रेम कह रही थी, और नेत्रोंमें जल भर रहा था; श्रीरत्नावती जी भी सुनते ही विकल होगईं, और नाम सुननेकी चाहना हुई।

यह नवीन दशा होने से आप उस दासी की प्रीत कुछ पहिचानने लगीं।

(६८५) टीका । कवित्त (८४३–६८५=१५८)

" बार बार कहै, काहा कहै ? उर गहै मेरो, बहै दृग नीर हो, सरीर सुधि गई है "। " पूछौ मत बात, सुख करौ दिन रात, यह सहै निजगात, रागी साधु कृपा भई है " ॥ अति उतकंठा देखि, कह्यो सो विशेष सब, रसिक नरेसनि की बानी कहि दई है । टहल छुटाई, औ सिरहाने लै बैठाई वाहि, गुरु बुद्धि आई; यह जानौ रीति नई है ॥ ५४३ ॥ (६२९–५४३=८६)

वार्तिक तिलक ।

रानी उस टहलनी से पूछने लगी कि " तू बारम्बार क्या कहती है ? किसका नाम लेती है ? मेरा हृदय पकड़ कर तू अपनी ओर खींचे लेती है ! " रानी के भी नेत्रों में जलकी धारा चलने लगी, देहकी सुधि भूलगई ।

दासीने उत्तर दिया कि " आप यह बात मत पूछिये, दिन रात अपने राजसी सुख में लीन रहिये; मुझपर अनुरागी साधुकी अलभ्य कृपा हुई है, सो उस प्रेम के अलौकिक सुख दुख को मेरा ही तन मन सहता है " । तब तो रानी जी की अतिसय उत्कण्ठा हुई; बोलीं कि " अवश्य ही मुझे सब बात बताव " ।

उसने अति श्रद्धा देख विशेष प्रेम पथ की वार्त्ता वर्णन कर, कुछ रसिकराज भक्तों सन्तों की बानी और कथा कह सुनाई ।

(दोहा) " नेह नेह सब कोउ कहै, नेह करो मति कोइ ।
मिले दुखी बिछुरे दुखी, नेही सुखी न होइ ॥ १ ॥

नेह स्वर्ग ते ऊतर्‌यो, भूपर कीन्हों गौन।
गली गली ढूंढ़त फिरै, बिन सिर को घर कौन ? ॥ २ ॥
बिरह असी जा उर धसी, लसी रसीली प्रीति।
चहत न मरहम घाव पर, यह प्रेमिन की रीति ॥ ३ ॥
प्रेम कठिन संसार में, नहिं कीजै जगदीश।
जो कीजै तौ दीजिये, तन मन धन अरु शीश ॥ ४ ॥
धनि वृन्दावन धाम है, धनि वृन्दावन नाम।
धनि वृन्दावन रसिक जन, धनि श्रीश्यामा श्याम ॥ ५ ॥"

इत्यादि उपदेश सुन, उस दासी को सेवा टहल करना छुड़ाके रानी ने अपने शीश के ओर बैठाया, और गुरु बुद्धि करके, उसका बहुत मान्य मर्याद आदर सत्कार करने लगी।

यह नवीन प्रीति की रीति जानना चाहिये ॥

(६८६) टीका। कवित्त (८४३-६८६ = १५७)

निसि दिन सुन्यौ करै, देखिबेको अरबरै, देखे कैसें जात जलजात दृग भरे हैं। कछुक उपाय कीजै, मोहन दिखाय दीजै, तब ही तौ जीजै वे तौ आनि उर अरे हैं॥ दरसन दूर, राज छोड़ै लोटै धूर, पै न पावै छवि पूर, एक प्रेमवस करे हैं। करौ हरि सेवा, भरि भाव धरि मेवा, पकवान रस खान, दै बखान, मन धरे हैं ॥ ५४४ ॥ (६२९-५४४ = ८५)

वार्तिक तिलक।

अब तो दिन रात उसी दासी के मुख से प्रभु रूप माधुरी का बखान और चरित्र सुना करती थीं; सुनते सुनते प्रभुके देखने की अतिशय चाह उत्पन्न हुई। मन और

नेत्र अति विकल हुये। प्रेमके अश्रु बहने लगे। दासी से कहा कि "कुछ उपाय करके मनमोहन के दर्शन करा दो, तब ही मेरा जीवन है, क्यों कि वे मेरे हृदय में समा गये हैं।" उसने कहा कि "महरानी! दर्शन तो बहुत कठिन हैं, दर्शनाभिलाषी लोग राज छोड़के धूल में लोटते हैं, अनेक उपाय करते हैं परन्तु उस छवि समुद्र के दर्शन नहीं पाते। हां, उसके वश करने का यत्न एक "प्रेम" ही है; इस्से आप प्रेमभाव में परायण होकर, श्रीहरि की भोग पूजा सेवा में लगिये। उस्में अनेक रसीले मेवा पकवान वस्त्र भूषण फूल माला आदिक सब सानुराग अर्पण करिये।"

श्रीरत्नावती जी ने दासी जी का कहना सब अपने मन में लिया॥

(६८७) टीका। कवित्त (८४३-६८७=१५६)

इन्द्र नीलमणि रूप प्रगट सरूप कियो, लियौ वहै भाव यों सुभाव मिलि चली है। नाना बिधि राग भोग लाडकौ प्रयोग जामैं, जामिनी सुपन जोग भई रंग रली है॥ करत सिंगार छवि सागर न वारपार रहत निहारि वाही माधुरी सो पली है। कोटिक उपाय करै, जोग जज्ञ पार परै, ऐ पै नहीं पावै यह दूर प्रेम गली है॥५४५॥ (६२९-५४५=८४)

वार्त्तिक तिलक।

रानी जी, इन्द्रनीलमणि के स्वरूप प्रगट करा, प्रतिष्ठा पूर्वक, भावसे, अपनी उपदेशिका दासी के सुभाव में मिल कर, सेवा करने लगीं। नाना प्रकार के राग भोग से लाड

लड़ातीं प्रेम से गुन गातीं रात्रि में स्वप्न भी उसी लेखा अनुराग का देखती थीं। दिन में शृंगार करके अपार छवि सागर की छवि देखती रहती थीं। केवल प्रभु की माधुरी से पुष्ट रहने लगीं।

कोई कोटान उपाय करै, योग यज्ञ व्रतादिकों को कर के पार हो जाय, परन्तु इस प्रेम पथ को सहज नहीं पा सका; प्रेम मार्ग विलक्षण है ॥

(६८८) टीका। कवित्त (८४३–६८८ = १५५)

देख्योई चहति तऊ कहति " उपाय कहा? अहो, चाह वात कहौं कौनकौ सुनाइयै? "। कहौ जू बनावौ ढिम महल कै ठौर एक चौकी लै बैठावौ चहूंओर समझाइयै ॥ आवैं हरि प्यारे तिन्हे ल्यावैं वे लिवाय इहां, रहै त धुवाय पाय रुचि उपजाइयै। नानाविधि पाक सामा आगे आनि धरैं; आप डारि चिक देखो, स्याम दृगानि लखाइयै ॥ ५४६ ॥ (६२९–५४६ = ८३)

वार्तिक तिलक

रानी जी प्रभु को साक्षात् देखना चाहती ही हैं, तथापि कहती हैं कि " क्या उपाय करूं? प्रभु के दर्शन की चाह की बात किसको सुनाऊं? " तब हितकारिणि दासी ने शिक्षा की कि " अपने राजगृह के पास आप एक 'संत-सेवाशाला' बनवाइये, चारों ओर सावधान मनुष्यों की चौकी बैठा दीजिये, आज्ञा दे दीजिये कि जो कोई हरि के प्यारे भक्त साधु आवें उनको सादर बिनय कर इस सन्त-

निवास में लिवा लावैं, और वहां के लोग चरण धोकर आसन बिछा बैठाके नाना प्रकार के पकवान भोजन आगे धर भोजन कराया करैं। आप ऊपर से चिक डालके दर्शन किया करें। तब श्याम सुन्दर प्रभु नेत्रोंसे दीख पड़ेंगे।"

श्रीमती रत्नावती जी ने ऐसाही किया, और करने लगीं

(६८९) टीका। कवित्त (८४३-६८९ = १५४)

आवैं हरि प्यारे साधु सेवा करि टारे दिन किहूं पाव धारे जिन्हैं ब्रजभूमि प्यारियै। जुगलकिशोर गावैं, नैननि बहावैं नीर; व्है गई अधीर रूप दृगनि निहारियै॥ पूछी वा खवासी सों "जु 'रानी' कौन अंग? जाके इतनी अटक संग भंग सुख भारियै॥ चली उठि, हाथ गह्यौ, "रह्यौ नहीं जात, अहो सहो दुख लाज बड़ी तनक बिचारियै"॥ ५४७॥ (६२९-५४७ = ८२)

वार्त्तिक तिलक।

प्रभुके प्यारे साधु आया करते उनकी सेवा कर कुछ दिन बिताये। एक दिन किसी प्रकार ब्रज भूमि के रहनेवाले प्रेमी उपासक पधारे। युगलकिशोर के यश गान कर नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाने लगे। रानी उनके दर्शन करते ही अधीर हो, उस दासी से पूछने लगीं कि "भला कहो तो मेरे अंगों में 'रानी' कौनसा अंग है कि जिसके अनुरोध से मैं सतसंग सुख से विमुख हो रही हूं? अब तो मैं इन संतों के बिन सन्मुख हुए, चरण गहे, नहीं रहूंगी"। ऐसा कह, उठके, चल ही तो दिया। दासी ने हाथ पकड़

रोका; परन्तु आपने कहा कि, "मुझे अब मत रोको; क्योंकि लज्जा तो बिचारी बहुत छोटी है और संत चरण वियोग का दुख बड़ा भारी है—

(६९०) टीका। कबित्त (८४१–६९० = १५१)

देख्यौं मैं विचारि, 'हरि रूप रससार, ताकौ कीजियै अहार, लाज कानि नीकें टारियै. "। रोकत उतरि आई, जहां साधु सुखदाई, आनि लपटाई पाय, विनती लै धारियै॥ सन्तनि जिमायबे की निजकर अभिलाष, लाख लाख भांतिनि सौं कैसे कै उचारियै। आज्ञा जोई दीजै, सोई कीजै, सुख वाहीमै, " जु, प्रीति अवगाही कही " करौ लागी प्यारियै "॥ ५४८॥ (६२९–५४८ = ८१)

वार्तिक तिलक।

"और मैंने अच्छे प्रकार से विचार कर देखा कि श्रीहरि रूप रस सब सुखोंका सारांश है, सो लाज कुलकानि को तज, उसीको पान करूंगी"।

निदान, वह रोकती ही रही, पर आप उतरके चली आई, उन सुखदाई सन्तों के चरणों में लिपटकर प्रार्थना करने लगीं। "मुझे अपने हाथों से सन्तों को प्रसाद पवाने की अभिलाषा लक्ष लक्ष भांति से अकथनीय होरही है परन्तु जैसी आज्ञा हो उसीमें मुझे सुख है"।

श्रीरत्नावती जी की अथाह प्रीति देख, सन्तों ने आज्ञा की कि "जिसमें तुमको सुख हो, सोई करो, वही हमको प्रिय है"॥

(६९१) टीका। कबित्त (८४१–६९१=१५२)

प्रेम मै न नेम, हेम थार लै उमगि चली, चली [illegible]

थार, सो परोसि के जिवाँये हैं। भींजि गए साधु नेह सागर अगाध देखि, नैननि निमेख तजी, भए मन भाए हैं॥ चंदन लगाय आनि बीरीऊ खवाय, स्याम चरचा चलाय चख रूप सरसाये हैं। धूम परी गाँव, झूमि आये, सब देखिवेकों; देखि नृप पास लिखि, मानस पठाये हैं॥५४१॥ (६२१-५४१=८०)

वार्तिक तिलक।

प्रेम में नेम तो रहता ही नहीं, संतों की आज्ञा पाय, सुवर्ण के थार में भगवत प्रसाद पदार्थ लेकर, प्रेमानन्द का जल नैनों में भर, उमंग से परोसके, सब को भोजन कराया। रानी का समुद्रवत अथाह प्रेम देख, साधुजन भी स्नेह में डूब नेत्रों के निमेष तज मन भाते आनन्द में मग्न और प्रेम से प्रफुल्लित होगये। श्रीरत्नावती जी ने अपने कर कमलों से चन्दन लगा, ताम्बूल के बीड़े खिला, फिर बैठकर श्रीश्यामसुन्दर की चरचा सुनने लगी। नेत्र रूप से सरसा उठे।

रानी के राजगृह से बाहर चले आने की धूम नगर भर में छागई, सब लोग देखने को आये; राज सम्बन्धी लोगों ने यह बात लिखकर पत्र मनुष्यों के हाथ, राजा के पास भेज दिये॥

(६९२) टीका। कवित्त (८४३-६९२=१५१)

रहे करि निसंक, रानी बंक मति लई नई, दई तजि लाज, बैठी मोड़नि की भीर में। लिख्यो ले दिवान नर

आये, सो बखान कियो, बांच सुनि, आंच लागी नृप के सरीर मैं ॥ " प्रेमसिंह " सुत, ताही काल सो रसाल आयो, भाल पै तिलक, माल कंठी कंठ तीर मैं । सपको सलाम कियौ, नरनि जतायदियौ, बोल्यौ " आव मोड़ीके रे, " पर्यौ मन पीर मैं ॥ ५५० ॥ (६२९–५५० = ७९)

" सलाम " = سلام = जुहार, नमस्कार, प्रणाम ।

वार्तिक तिलक ।

मन्त्रियों ने यह लिखा कि " रानी जी निशंक हो, नई टेढ़ी चाल गहके, लाज तज, मोड़नि अर्थात मुड़िया बैरागियों के समूह में जाबैठी ।

माधोसिंह इस पत्र को पढ़, और पत्र लानेवाले जनों से वार्त्ता सुन, तन मन से जलगया । दैवयोग उसी समय श्रीरत्नावती जी " के पुत्र प्रेमसिंह जी ने, रसाल भाल में तिलक कंठ में कंठी माला धारण किये आकर, राजा को प्रणाम किया । समीपी लोगोंने जताया कि " कुमार जी जुहार करते हैं " ।

राजा क्रोध से बोल उठा कि " मुंडी बैरागिनि का बेटा आ" पिता के वचन सुन प्रेमसिंह जी के मन में बड़ा दुःखहुआ ।

(६९३) टीका । कवित्त (८४३–६९३ = १५०)

कोप भरि राजा गयो भीतर, सो सोच नयो, पाछे पूछि लयो, कह्यौ नरनि बखान कै । तब तो विचारी, " अहो मोंडा ही हमारी जाति, " भयौ दुख गात, भक्ति भाव उर आनके ॥ लिख्यौ पत्र माजी कों " जु प्रीति हिये साजी जो पै सीस पर

बाजी आय राखौ ताजि प्रान कै। सभा मधि, भूप कही "मोढीको विरूप भयौ' रहैं अब मोडीकेहीं भूलौ मति जानकै" ॥ ५५१ ॥ (६२९–५५१ = ७८)

वार्त्तिक तिलक ।

राजा क्रोध में भर गृह के भीतर चला गया ।

कुमार प्रेमसिंह जी ने सोचयुक्त, लोगों से इस वचन का हेतु पूछा; उन्होंने रानी का सब वृत्तान्त कह सुनाया । तब प्रेमसिंह जी ने विचारा कि "ओह ! जो मैं मोड़ी का पुत्र हूं, तो मैं भी मोड़ा (वैरागी) ही हूं, अर्थात् मैं साधु हूं, तौ तो अच्छा है"। अपनी माता का भक्ति भाव समझ बड़ा सुखी हुआ, और उसी क्षण इनने अपनी माताजी को पत्र लिखा कि "आपने जो भगवद्भक्ति प्रीति हृदय में धारण की, सो अब भली भांति सत्य कीजिये; चाहे प्राण तज दीजिये परन्तु इस टेक को नहीं तजियेगा; क्योंकि आज मेरे सीस पर यह बीती कि राजा ने भरी सभामें 'मोड़ी का पुत्र' मुझको कहा; सो जिस्में अब मैं मोड़ीही का पुत्र रहूं, इस बातको जान कर कदापि भूलिये नहीं" ॥

(६९४) टीका । कवित्त (८४३–६९४ = १४९)

लिख्यौ दै पठाये बेगि मानस, लै आये जहां रानी भक्ति सानी हाथ दई, पाती बांचियै । आयौ चढ़ि रंग, बांचि सुत को प्रसंग, वार भीजे जे फुलेल, दूर किये, प्रेम सांचियै ॥ आगे सेवा पाक निसि महल वसत जाय, त्याग माहीं ठौर प्रभु नीके गाय नाचियै । नृप अन्न त्यागि दियौ

दियौ, लिखि पत्र पुत्र, "भई मोडी आज, तुम हित करि जांचिये ॥ ५५२ ॥ (६२९–५५२ = ७७)

वार्तिक तिलक ।

कुँवर जी ने पत्र लिख दिल्ली से मनुष्य के हाथ भेज दिया । जहां भक्ति रस से भींगी रानी जी थीं शीघ्र वहां लाके उनने पत्र दिया ।

पत्र पढ़, पुत्र की प्रार्थना सुन आपको प्रेम रंग का आवेश आगया; सच्ची प्रेमिन तो थीं ही, उसी क्षण फुलेल से भीगे हुये बालों को मुड़वा कर मुंडी होगई । आगे संतों को भोजन करा, रात्रि में राजस्थान में जा शयन करती थीं, अब उस दिन से उसी संतशाला ही में प्रभु को लाके दिन रात पूजा गान नाच भजन करने लगीं; और, राजा का अन्नादि लेना छोड़ दिया ।

उन्हीं मनुष्यों के हाथ पत्र लिख पुत्र को भेज दिया कि "आज तुम्हारी प्रेमप्रार्थना सुन, मैं सच्ची मोड़ी हो गई; तुम आनन्द से सच्चे मोड़ा (वैरागी) रहना" ॥

(६९९) टीका । कवित्त (८४३–६९५ = १४८)

गए नर पत्र दियौ, सीस सो लगाय लियौ, बांचि कै मगन हियौ, रीझि बहु दई है । नौबत बजाई द्वार बांटत बधाई; काहू नृपति सुनाई कही "कहा रीति नई है" ॥ पूछे भूप लोग कह्यौ मिटे सब सोग भये मोडी के जू जोग स्वांग कियौ बनि गई है । भूपति सुनत बात, अति दुख गात भयौ, लयौ वैर भाव चढ्यौ त्यारी इत भई है ॥५५३॥ (६२९–५५३ = ७६)

वार्तिक तिलक ।

उन लोगों ने पत्र लेकर जा कुँवर जी को दिया; प्रेमसिंह पत्र को ले, मस्तक में लगा, पढ़कर प्रेमानन्द में डूब गये । और, बहुत सा द्रव्य याचकों को बधाई बांट, द्वार पर मंगल के बाजे बजवाने लगे ।

किसीने माधवसिंह से कहा कि "कुँवर के द्वार पर आज रीझ बटती, बधाई बजती है" । उसने कहा "पूछो कि यह नया आनन्द किस हेतु है ?" राजा के लोगोंने आकर पूछा । प्रेमसिंह जी ने उत्तर दिया कि "हमारी माता ने अब यथार्थ विरक्त भक्त भेष बना लिया; हम सच सच मोढ़ी के होगये । उसी आनन्द की बधाई है" ।

राजा को यह बात सुनते ही अतिशय दुख, क्रोध तथा बैर उत्पन्न हुआ । कुँवर को घात करने को सेना सहित चढ़ चला । प्रेमसिंह जी भी सुम युद्ध के लिये संनद्ध हुये ॥

(६९६) टीका कवित्त (८४३–६९६ = १४७)

नृप समझाय राख्यौ "देस में चवाय व्है है" बुधिवंत जन आय सुत सों जताई है । बोल्यौ "बिषै लगि कोटि कोटि तन खोये, एक भक्ति पर आवै काम यह मन आई है॥ पाय, परि, मांगि लई, दई जो प्रसन्न तुम; राजा निसिचर्‍यौ जाय करौं जिय भाई है । आयौ निज पुर ढिग ढुरि नर मिले आनि, कह्यौ सो बखानि सब; चिन्ता उपजाई है; ॥ ५५४ ॥ (६२९–५५४ = ७५)

वार्तिक तिलक ।

मंत्रियों ने माधवसिंह को बहुत समझाया कि "देखिये,

यदि आप पुत्र का घात करेंगे तो लोक में बड़ीही निन्दा होगी इस्से छमा कीजिये"। और इधर प्रेमसिंह जी को भी आकर समझाया। कुँवर जी कहने लगे कि संसारी विषय के हेतु मैंने कोटिन शरीर खोडाले, एक शरीर भला भगवद्भक्ति पर भी काम आजाय तो बहुत अच्छा है"। बुद्धिमान लोगों ने कुँवर के चरणों में पड़, क्षमा कराई और दोनों ओर शान्तकिया।

तब माधोसिंह दिल्ली से रात्रि में चला कि जाकर रानी को मार डालूंगा। अपने पुर के पास आया; उसके सब लोग आकर मिले और रानीका सब वृत्तान्त सुनाया। उसको बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई।

(६९७) टीका। कवित्त (८४३-६९७=८४१)

भवन प्रवेस कियौ, मंत्री जो बुलाय लियौ, दियौ कहि
"कटी नाक लोहू निरवारिये। मारिबौ कलंक हू न आवै"
यों सुनावै भूप काहू बुधिवंत नै बिचारि लै उचारियै॥
"नाहर जु पींजरा में दीजै छाड़ि लीजै मारि पाछे ते
पकरि वह बात दाबि डारियै"। सबानि सुहाई; जाय
करी मन भाई; आयो, देख्यौ वा खवासी कही "सिंघ-
जू निहारियै"॥ ५५५॥ (६२९-५५५=७४)

वार्त्तिक तिलक।

माधौसिंह ने अपने घर में जाकर मंत्रियों को बुलाकर कहा कि "इस स्त्री ने मेरी नाक काट ली! पर जब तक रानी रहेगी तब तक मानो रक्त चल रहा है, सो बन्द करो; जिस्में मारनेका कलंक भी न लगे और इसका वध

हो ही जाय"। सुनकर कोई संसारी बुद्धिमान विचार के बोला कि जो पिंजड़े में बाघ है उसीको उस घर के भीतर छुड़वा दीजिये। वह रानी को मार डालेगा पीछे बाघ को पकड़ के बात छिपा लेंगे कहदेंगे कि "बाघ छूट गयाथा सो उसने रानी को मार डाला"। सुनते ही राजा और सब कुमंत्रियों को यह बात अच्छी लगी, जाकर ऐसा ही किया।

रानी पूजा करती थीं वह दासी देख कर बोली कि "देखिये सिंह आया।"

(६९८) टीका। कवित्त (८४३-६९८ = १४५)

करै हरि सेवा भरि रंग अनुराग दृग, सुनी यह बात नेकु नैन उन टारे हैं। भाव ही सो जाने, उठि अति सनमाने, "अहो! आज मेरे भाग, श्रीनृसिंह जू पधारे हैं" ॥ भावना सचाई वही शोभा लै दिखाई, फूल माल पहिराई, रचि टीकौ लागे प्यारे हैं। भौन ते निकसि धाए, मानौ खंभ फारि आये, बिमुख समूह ततकाल मारि डारे हैं ॥ ५५६ ॥ (६२९-५५६ = ७३)

वार्तिक तिलक।

रानी जी, आनन्द से भरी, नेत्रों को अनुराग रंग से रँग के, श्रीहरि सेवा करती थीं; यह बात सुन नैन उठा के उधर देख श्रीनृसिंह भाव से निश्चय कर बोलीं कि "आज मेरे भाग्यवश श्रीनृसिंह जी पधारे हैं" और उठके प्रणाम कर पूजा की सामग्री ले अति सनमान पूर्वक पूजा

करने को चलीं।

सर्वान्तरयामी प्रभु ने भावना की सचाई देख, नृसिंह रूप की शोभा से दरशन दिया। आप जाके श्रीनृसिंहजीको तिलक दे, माला पहिरा, भोग लगा के आरती प्रणाम कर, प्रीतयुक्त दर्शन करने लगीं। श्रीरत्नावती जी की जय।

फिर व्याघ्र रूप प्रभु उस घर से निकले, मानो श्री प्रल्हादपति जी खंभा को फाड़कर प्रगट हुये। जो दुष्ट पिंजड़ा लेकर छोड़ने आयेथे उन सबको उसी क्षण हिरण्य-कशिपु के समान मार डाला। श्रीनृसिंह भगवान की जय॥

(६९९) टीका। कवित्त (८४३–६९९ = १४४)

भूप कों खबरि भई, रानी जू की सुधि लई, सुनी नीकी भांति; आप नम्र ह्वैके आये हैं। भूमि पर साष्टांग करी कै यौं *हरी मति, भरी दया आय वाके वचन सुनाये हैं॥ "करत प्रनाम राजा," बोली "अजू लाल जू कौं," "नैकु फिरि देखौ" "एक ओर ए लगाए हैं। बोल्यो नृप "राज धन सबही तिहारो धारौ" पति पै न लोभ कही "करौ सुख भाये हैं" ॥५५७॥ (६२९–५५७ = ७२)

* सब प्रतियों में ऐसा ही पाठ पाया गया।

वार्त्तिक तिलक।

जो व्याघ्र को छोड़ने आये थे वे सब मारे गये और लोग भाग गए, जाके माधवसिंह से उनने कहा कि "बाघ लोगों को मार के चला गया"। पूछा कि "रानी की क्या दशा हुई?" लोगों ने कहा कि "वे तो आनन्द से

भजन कर रही हैं; उनने वाघ की पूजा की तब कूव के बाहर आ उसने लोगों को मारा" ।

यह प्रभाव सुन राजा ने, अति नम्र होकर श्रीरत्नावती जी के पास आ, भूमि पर पड़के, कई बार साष्टांग प्रणाम किये क्योंकि परचो पाकर मति हरगई ।

राजा को प्रणाम करते देख उस दासी ने, वृथा से पूर्ण हो, रानी को बचन सुनाया कि "राजा जी प्रणाम करते हैं," आप बोलीं कि "श्रीनन्दलाल जी को प्रणाम करते हैं," उसने विनय किया "भला थोड़ा इधर दृष्टि तो कीजिये" रानी ने उत्तर दिया, कि "नेत्र एक ओर लगे हुये हैं, अब दूसरी दिस नहीं हो सक्ते ।"

तब माधवसिंह जी ने विनय किया कि "राज और धन सब तुम्हारा है, जो मनमें आवै सो करो" रानी जी को तो पति पर लोभ था ही नहीं, कह दिया कि "आप अपने मन माने राजसुख कीजिये; मैं अपने सुख दायक में लगीहूं" ।

(७००) टीका । कवित्त (८४३–७०० = १४३)

राजा "मानसिंह" "माधौसिंह" उभै भाई चढ़े, नाव-पारि कहूं, तहां बुडिबे कों भई है । बोल्यौ बड़ो भ्राता "अब कीजिये जतन कौन? भौन तिया भक्त" कहि छोटे सुधि दई है ॥ नैकु ध्यान कियौ, तब आनिकै किनारौ लियौ, हियौ हुलसाइयौ, जेठ चाह नई लई है । कर्यौ आय दरसन बिने करि गयौ भूप, अतिही अनूप कथा, हिये व्यापिगईहै ॥ ५५८ ॥ (६२९–५५८ = ७१)

"कनार" = کنار = तीर, तट, छोर, पांजर।

वार्तिक तिलक।

एक समय राजा मानसिंह और छोटे भाई माधवसिंह दोनों किसी महानदी के पार होने को नाव पर चढ़े थे, दैवयोग नाव डूबने लगी। मानसिंह जी अतिशय घबराके भाई से बोले कि "अब क्या यत्न करना चाहिये?" माधवसिंह ने कहा, "मेरे गृह की स्त्री परम भक्त है;" बस दोनों जनोंने रानी जी का ध्यान किया। उसी क्षण राम कृपा से नौका तीर पर लग गई। दोनों भाई अपना नवीन जन्म मान अति आनन्दित हुये; और मानसिंह जी को रानी जी के दरशन की नवीन चाह उत्पन्न हुई। सो आकर दरशन विनय किया, तब अपने घर गये। इस प्रकार भक्तराज रत्नावती जी की अतिशय अनूप कथा मेरे हृदय में व्याप्त थी सो सुना दी॥

(२१९) श्रीजगन्नाथपारीष।

(७०१) मूल। छप्पै (८४३–७०१ = १४२)

पारीष प्रसिद्ध कुल काँथड़्या जगन्नाथ सीवाँ धरम॥ (श्री) रामानुज की रीति प्रीति पन हिरदैं धारयो। संस्कार सम तत्व हंस ज्यों बुद्धि बिचारयौ॥ सदाचार, मुनि बृत्ति, इंदिरा पधति उजागर। रामदास सुत संत अननि दसधा कौ आगर॥

पुरुषोत्तम परसादतें, उभै अंग पहिर्यो वरम। पारीष प्रसिद्धि कुल कांथडया जगन्नाथ सीवाँ धरम ॥ १४५ ॥ (२१४-१४५ = ६९)

वार्त्तिक तिलक ।

पारीष ब्राह्मण, कॉंथड्या कुल में उत्पन्न श्रीरामदास जी के पुत्र भक्त श्रीजगन्नाथ जी भागवत धर्म की सीमां हुये । अनन्त श्री रामानुज स्वामी जी की रीति से भगवत प्रीति पन (नियम) आपने अपने हृदय में धारण किया । पंचसंस्कार तथा शास्त्र संस्कार और सब जगत में सम व्याप्त भगवत तत्व को, बुद्धि से, दूध के समान सार विचार के, हंसवत्, ग्रहण कर आपने असत् वस्तु को जल के सम त्याग किया ।

मुनि जनों की सी सदाचार वृत्ति, धारण कर, श्रील-क्ष्मी संप्रदाय में, परम प्रकाशमान हुये । और साधु सुभाव, अनन्य शरणागत, दशधा (प्रेमा) भक्ति में परम प्रवीण हुए ।

अपने गुरु श्रीपुरुषोत्तम जी की कृपा से बाह्यान्तर दोनों अंगों में वर्म (बखतर) धारण किया अर्थात् आप राजा के पुरोहित सूर वीर विख्यात थे इससे प्रगट शरीर में कवच पहिनते थे दूसरा सूक्ष्म अन्तर अंग में क्षमा सहिस्नुता भक्ति का कवच पहिना जिस्में अन्तर शत्रुओं के शस्त्र आप को न लगैं । और, दोनों भुजाओं पर भगवदायुध छाप तथा सूक्ष्म अन्तर अंग में श्रीचरण चिन्ह ध्यान भी कलिके शस्त्रों के लिये कवच थे सो सब धारण किए ।

(दो०) "नैन सजल तिहिं रंग में, चित पायौ बिश्राम।
बिवस बेगि ह्वै जात सुनि, लाल लाड़िले नाम॥"

(२२०) श्रीमथुरादास जी।

(७०२) मूल। छप्पै (८४३-७०२ = १४१)

कीरतन करत कर सुपनेहूं मथुरादास न मंड्यौ॥ सदाचार, संतोष सुहृद, सुठि, सील, सुभासै। हस्तक दीपक उदय, मेटि तम, वस्तु प्रकासै॥ हरि कौ हियें बिस्वास नंद नंदन बल भारी। कृष्ण कलस सौं नेम जगत जानै सिरधारी॥ (श्री) वर्द्धमान गुरु वचन रति सो संग्रह नहिं छंड्यौ॥ कीरतन करत कर सपनेहूं मथुरादास न मंड्यौ॥ १४६॥ (२१४-१४६ = ६८)

वार्तिक तिलक

श्रीमथुरादास जी के भगवन्नाम कीर्तन स्मरण करते समय, चेटकी का कर, (करतब्य, जादू, पाषंड), स्वप्ने में भी नहीं मंडित हुआ; अर्थात् प्रथम जो मंडित किये हुए था सो आप के जाने से रुक गया। पूर्वाचार्य्यों के सदाचार, संतोष, सावधानता, सुहृदता, अतिशय शील, आदिक, गुण सुन्दर आप में झलकते थे; और भगवत विषय वस्तु तत्त्व का ज्ञान ऐसा था कि जैसे हाथ में दीपक लेनेसे एहके सब वस्तु प्रकाशमान होते हैं।

आपके हृदय में श्रीहरि नन्दनन्दन जी का विश्वास बल बड़ा भारी था। श्रीकृष्ण पूजा जल का कलश नित्य नियम से आप अपने मस्तक पर रखकर लाते थे, यह सब जगत् जानता है।

अपने गुरु "श्रीवर्द्धमान" जी के वचनों में अतिशय प्रीति थी, उसका संग्रह जन्मभर आपने नहीं छोड़ा॥

(७०१) टीका । कवित्त (८४१–७०१ = १४०)

बसके "तिजारे" मांझ, भक्तिरस रास करी; करी एक बात, ताकौ प्रगट सुनाइये। आयौ भेषधारी कोऊ करै सालग्राम सेवा, डोलत सिंहासन पै, आनि भीर छाइये॥ स्वामी के जु शिष्य भयौ, तिनहूं कै भाव देखि, वाही कौ प्रभाव आय कह्यो हिय भाइयै। नेकु आप चलौ, उह रीतिकों बिलोकिये जु, बड़े सरवज्ञ, कही "दूखै नहीं जाइयै"॥५५९॥ (६२९–५५९ = ७०)

वार्तिक तिलक ।

तिजारे ग्राम में निवास कर, रसराशि-भक्ति की आपने एक बात और की, सो हम प्रगट कर सुनाते हैं। उस ग्राम में एक चेटकी (धूर्त) वैष्णव का वेष धारण किये आया; सो श्रीशालिग्राम जी की पूजा करता था, चेटक यह करता कि सिंहासनपर शालिग्राम जी आपसे आप डोलते रहते थे। यह विचित्रता देख लोगों की भीड़ छागई।

स्वामी मथुरादास जी के शिष्यों को भी देखकर बड़ा भाव उत्पन्न हुआ, उसका प्रभाव कहकर, आपसे उनने

बिनय किया कि "थोड़ा चलके उस रीति को देखिये"। आप तो बड़े सर्वज्ञ थे; बोले कि "हमारे जानेसे उसका हृदय दुखित होगा इस्से नहीं जायँगे" ॥

(७०४) टीका । कवित्त (८४३–७०४ = १३९)

पाय परि, गये लैकै, जाय ढिग ठाढ़े भये, चाहत फिरायौ, पै न फिरैं सोच पर्‌यौ है जानि गयौ आप, कछु याही कौ प्रताप, ऐपै मारौं करि जाप यों बिचार मन धर्‌यौ है॥ मूठ लै चलाई, भक्ति तेज आगे पाई नहिं, वाही लपटाई, भयौ ऐसौ मानौ मर्‌यौ है ॥ व्है करि दयाल, जा जिवायौ, समझायौ; प्रीति पंथ दरसायौ, हिय भायौ, शिष्य कर्‌यौ है॥५६०॥ (६२९–५६० = ६९)

वार्त्तिक तिलक ।

पर, शिष्य लोग चरणों में पड़के लिवागये। आप मन में भगवन्नाम कीर्तन करते जाकर समीप में खड़े हुये। उसने शालिग्राम जी को फिराना डोलाना चाहा, पर नहीं डोले फिरे। चेटकी को बड़ा सोच हुआ। जान गया कि "इसीका प्रताप है जो नहीं डोलते; इस्से मैं अपने जादू का मंत्र जपके इसको मारडालूं" यह मनमें निश्चय कर (मारण मन्त्र) की मूठ चलाई।

श्रीमथुरादास जी की भक्ति तेज के आगे वह प्राप्त नहीं हुई, वरंच वह मूठ उलट कर उसी को लगी, मृतक समान हो गिरपड़ा।

सुनके, दयालु हो, जाकर आपने जिलाया, और समझा

कर उपदेश दे श्रीभगवत भक्ति प्रीति का मार्ग दिखाया। तब जादू तज, आपका शिष्य हो, साधुता में प्रवृत हुआ, भगवत भजन करने लगा। शालग्रामजी की सच सच पूजा करने लगा।

(२२१) श्रीनारायणदास नृतक।

(७०५) मूल। छप्पै (८४३-७०५ = १३८)

नृतक नरायन दास कौ, प्रेम पुंज आगे बढ्यौ॥ पद लीनौ परसिद्ध प्रीति जामें दृढ नातो। अक्षर तनमय भयौ मदन मोहन रँग रातो॥ नाचत सब कोउ आहि काहि पै यह बनि आवै। चित्र लिखित सौ रह्यौ त्रिभँग देसी जु दिखावै॥ "हँड़िया * सराय" देखत दुनी हरिपुर पदवी कौं चढ्यौ॥ नृतक नरायन दास को प्रेम पुंज आगेबढ्यौ १४५

(२१४)-१४५ = ६९

"पदवी" = मार्ग, पथ, रास्ता।

वार्तिक तिलक।

नृतक (नाच करनेवाले कथक) श्रीनारायणदास जी का प्रेम पुंज आगेही को बढता गया अर्थात् प्रभुके समीप तक पहुंच गया। एक समय सप्रेम नृत्य करने को खड़े हो, प्रसिद्ध पद जिसमें प्रथम हीं "दृढ़ प्रीति का नाता" ऐसा शब्द पड़ा है सो गाने लगे (पद- " सांचो एक प्रीति को नातो। कै जाने राधिका नागरी कै मदनमोहन रँग

रातो "॥) सो "मदन मोहन रँग रातो" इन अक्षरों में तनमय होगये अर्थात् मदन मोहन के अनुराग में रँगके लीन होगये। नाचते गाते तो सबही हैं, परंतु जैसी श्री नारायणदास जी से बन आई, वैसी दूसरे से कहां बन आती है। पद गान के ध्यान में ऐसे तदाकार हुए, कि मानों चित्र के लिखे हैं; और जिस नित्य निकुंज देस में त्रिभंगी लाल श्री राधिका जी सहित विराजते विहार करते हैं, मन चित्त से वहां जाकर प्रत्यक्ष दर्शन किए।

हड़िया सराय ❋ में सब लोगों के देखते २ उसी दशा में तन तज ऊपर हरिपुर के मार्ग में चढ़ प्रभुको प्राप्त हुये।

❋ हंड़िया सराय जो प्रयागराज से छ कोश है। प्रसिद्ध "मुछा दो-प्याज़ां" वाला हँड़िया सराय।

(७०६) टीका। कवित्त (८४३-७०६ = १३७)

हरिही कें आगे नृत्य करै, हिये धरै यही, ढरै देस देसनि मे जहां भक्त भीर है। "हंडिया सराय" मध्य जायकै निवास लियौ, लियौ सुनि नाम सो मलेछ ज्ञाति "मीर" है॥ बोलिकै पठाये, "महाजन हरिजन सबै आयौ है सदन" गुनी ल्यावौ चाह पीर है। आनिकै सुनाई, भई बड़ी कठिनाई, "अब कीजै जोई भाई वह निपट अधीर है"॥५६१॥ (६२९-५६१ = ६८)

"मीर" = میر = सैयद = سید प्रतिष्ठित मुसलमानजाति।

वार्त्तिक तिलक।

श्रीनारायनदास जी का नियम था कि श्रीहरि की मूर्ति ही

के आगे नाचते अन्यत्र नहीं; जहां जहां श्रीभगवत भक्त बसते थे, उन्हीं देशों में विचरा करते थे।

एक समय "हँड़िया सराय" में एक भगवत् भक्त के घर में जाके ठहरे; नृत्य गान किया, उसकी धूम ग्रामभर में हुई। हँडिया सराय का अधिपति (हाकिम) म्लेक्ष जाति "मीर" था, सो सुनकर उसने आपको सनेसा भेजा कि मेरे यहां महाजन भक्तजन सब कोई आये हैं, और मुझे भी बड़ी चाह है, सो अवश्य आइये। लोगोंने आकर सुनाया।

आपके हृदय में बड़ा संकष्ट पड़ा; आपने कहा कि "मैं वहां नहीं जा सक्ता"। फिर लोगों ने आकर कहा कि "वह आपके लिये बहुत अधीर हो रहा है, हाकिम है, जो आपको अच्छा लगै सो कीजिये"॥

(७०७) टीका। कवित्त (८४३-७७०=१३६)

बिना प्रभु आगें नृत्य करि पैन नेम यहै, सेवा वाके आगें कहौं कैसें बिस्तारिये। कियौ यो बिचार ऊंच सिंहासन माला धारि तुलसी निहारि हरि गान कर्‍यौ भारियै॥ एक ओर बैठ्यौ मीर, निरखैं न कोर दृग, मगन किशोर रूप, सुधि लै बिसारियै। चाहैं कछु वारौ परे औचकही प्रान हाथ, रीझि सनमान कीनो मीच लागी प्यारिये॥ ५६२॥ (६२९-५६२ = ६७)

वार्त्तिक तिलक।

आपने उत्तर दिया, "यह मेरा नेम है कि 'प्रभुके ही आगे नृत्य करूं अन्यत्र नहीं, और प्रभु के सेवा स्वरूप

उस यवन के आगे कैसे पधराऊं ? ” फिर सबका आग्रह देख, परबशता विचार कर, ऐसा यत्न किया कि ऊंचे सिंहासन पर श्री तुलसी*जी की माला विराजमान की; भाव दृष्टि से श्रीभगवत् में और तुलसीजी में अभेद देख, अति उत्तम नृत्य गान किया ।

एक ओर वह “ मीर ” (यवनपति) भी बैठा था, उसकी दिशि भूलकर भी आपने न देखा । भाव की सबलता से युगलकिशोर रूप में ऐसे मग्न हुये कि देहकी सुधि किंचित भी न रहगई । मानसी में श्रीप्रभु पर आपने कुछ नेवछावर करना चाहा; अचानक प्राण हाथ पड़गये; युगलरूप में रीझ, सनमान पूर्वक, वही (प्राण ही) नेवछावर कर फेंक के, प्रभुको प्राप्त होगए । नित्य विहार में जा मिले । आप की मृत्यु हमको अतिही प्रिय लगी । (सोरठा)

प्राण तोर, मैं तोर, बुधि, मन, चित, यश, तोर सब ।
एक तुही तो मोर, काह निवेदौं तोहि ? पिय ! *

* श्रीवैष्णव, श्रीशालग्राम तथा श्रीतुलसी में अभेद मानते हैं ।

(७०८) मूल । छप्पै (८४३-७०८=१३५)

गुनगन बिसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा ॥ बोहिथ[1], राम गुपाल[2], कुवरबर[3], गोविन्द[4], मांडिल[5] । छीत स्वामि[6], जसवंत[7], गदाधर[8], अनंतानंद[9], भल ॥ हरिनाभमिश्र[10], दीनदास[11], बछपाल[12], कन्हर[13] जसगायन । गोसू[14], रामदास[15], नारद[16], श्याम[17]

पुनि हरिनारायनं[१८] ॥ कृष्णजीवनं[१९], भगवान जनं[२०], श्यामदासं[२१], बिहारी[२२], अमृतदा । गुन गन बिसद गोपाल के एते जन भये भूरिदा ॥ १४६ ॥

(२१४–१४६ = ६८)

वार्तिक तिलक

श्रीभगवत के विशद गुण गण सुयश रूपी बड़ा भारी दान देनेवाले अर्थात कथन कर जीवों को सुनानेवाले इतने सुजन हुये, उनके नाम ।

इन सबोंने भले प्रकार श्रीहरियशामृत की बरषा की ।

(१) श्रीबोहिथ जी	(१२) श्रीवछापाल जी
(२) श्रीरामगोपाल जी	(१३) श्रीकन्हर जी
(३) श्रीकुंवरवर जी	(१४) श्रीगोसू जी
(४) श्रीगोविन्द जी	(१५) श्रीरामदास जी
(५) श्रीमांडिल जी	(१६) श्रीनारद जी
(६) श्रीछीतस्वामी जी	(१७) श्रीश्याम जी
(७) श्रीयशवन्त जी	(१८) श्रीहरिनारायण जी
(८) श्रीगदाधर जी	(१९) श्रीकृष्णजीवन जी
(९) श्रीअनन्तानन्द जी	(२०) श्रीजन भगवान जी
(१०) श्रीहरिनाभ मिश्र जी	(२१) श्रीश्यामदास जी
(११) श्रीदीनदास जी	(२२) श्रीबिहारी जी

(७०९) मूल । छप्पै (८४३–७०९ = १३४)

निरवर्त्त भए संसारतें, तेमेरे जजमान सब ॥

उद्धव[१], रामरेनु[२], परसराम[३], गंगा[४], धूषेत निवासी। अच्युतकुल[५], कृष्णदास[६], बिश्राम[७], सेषसाईकेबासी॥ किंकर[८], कुंडा[९], कृष्णदास[१०], खेम[११], सोठा[१२], गोपानँद[१३]। जेदेव[१४], राघौ[१५], बिदुर[१६], दयाल[१७], दामोदर[१८], मोहन[१९], परमानँद[२०]॥ उद्धव[२१], रघनाथी[२२], चतुरोनगन[२३], कुंजओक जे वसत अब। निरवर्त्त भये संसारतें ते मेरे जजमान सब॥ १४७॥ (२१४-१४७=६७)

वार्त्तिक तिलक।

जो भक्त संसार से निवृत्त हुये वे सब मेरे जजमान हैं और मैं उनका यशगायक याचक हूं, उनमें विशेषोंकेनाम।

(१) श्रीउद्धव जी
(२) श्रीरामरेनु जी
(३) श्रीपरसराम जी
(४) धूषेतनिवासी श्रीगंगा जी
(५) श्रीअच्युतकुल जी
(६) श्रीकृष्णदास जी
(७) सेषसाई के वासी श्रीविश्राम जी
(८) श्रीकिंकर जी
(९) श्रीकुंडा जी
(१०) दूसरे श्रीकृष्णदास जी
(११) श्रीखेम जी
(१२) श्रीसोठा जी
(१३) श्रीगोपानन्द जी
(१४) श्रीजयदेव जी
(१५) श्रीराघौ जी
(१६) श्रीजयतारन विदुर जी
(१७) श्रीदयाल जी
(१८) श्रीदामोदर जी
(१९) श्रीमोहन जी
(२०) श्रीपरमानन्द जी
(२१) दूसरे श्रीउद्धव जी
(२२) श्रीरघुनाथी जी अब वृन्दावनकुंजकेनिवासी
(२३) श्रीचतुरोनगन जी॥

(२२२) श्रीजयतारन बिदुर जी ।

(७१०) टीका । कवित्त (८४३–७१० = १३३)

झीथडौ ढिगही मै जैतारन बिदुर भयौ, भयौ हरिभक्त, साधु सेवा मति पागी है। बरषा न भई सब खेती सूखिगई, चिंता नई, प्रभु आज्ञा दई, बड़ौ बड़भागी है ॥ "खेत कौं कटावौ, औ गहावौ, लै उडावौं, पावौ दो हजार मन अन्न," सुनी प्रीति जागी है। करी वही रीति, लोग देखैं न प्रतीति होत, गाए हरि मीत राशि लगी अनुरागी है ॥ ५६३ ॥ (६२९–५६३ = ६६)

"हजार" = १००० = सहस्र = दस सौ

वार्तिक तिलक ।

जोधपूर राज्य में झीथड़ा गांव के पासही में श्रीहरि भक्त "जैतारन–विदुर जी" अपनी मति संत सेवा में लगानेवाले हुये ॥ एक समय वर्षा न होने से सब खेती सूख गई। दुर्भिक्ष पड़ा, आपको संतों के भोजन के लिये नवीन चिन्ता हुई। तब स्वप्न में कृपासिन्धु प्रभु ने आज्ञा दी, क्योंकि आप बड़े भाग्यवान थे, कि "सूखे खेतको कटाकर गहा ओ ऊड़ाओ (उसावो), उसमें तुमको २००० (दो सहस्र) मन अन्न मिलेगा।"

आज्ञा सुनते ही जागे; अति प्रीतिमान हो आपने वैसाही किया। लोग देखकर विश्वास के अभाव से हँसते थे; और विदुर जी श्रीकृपालु हरि के चरणों में प्रीति विश्वास पूर्वक गुन गाते थे; इस्से दो सहस्र मन की राशि लगगई। देख

कर सब ने अनुराग से "जय जय" कार किया। (कुछ आश्चर्य्य नहीं)॥

(चौ०) "सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु शत सरिस सोहाई॥" कैसे सेवक?—"राम अमल माते फिरैं, पीवैं प्रेम निशंक। आठ गांठि कोपीन में, कहा इन्द्र सो रंक॥"

(२२३) स्वामी श्रीचतुरानगन (नागाचतुरदास) जी।

(७११) मूल। छप्पै (८४३–७११ = १३२)

श्री स्वामी चतुरो नगन, मगन रैन दिन भजन हित॥ सदा जुक्त अनुरक्त भक्त मंडलकों पोखत। पुर मथुरा ब्रजभूमि रमत सबहीं को तोखत॥ परम धरम दृढ़ करन देव श्रीगुरु आराध्यो। मधुर बैन मुठि, ठौर ठौर हरिजन सुखसाध्यो॥ संत महंत अनंत जन, जस बिस्तारत जासु नित। श्री स्वामी चतुरोनगन मगन रैन दिन भजन हित॥ १४७॥ (२१४–१४८ = ६६)

वार्त्तिक तिलक।

नागा (नंगे) नग्नरूप श्रीस्वामी "चतुरो" जी दिन रात भजन में मग्न रहते थे। सदा भगवत अनुराग युक्त भक्त मंडल को भी अनुराग से पुष्ट करते, मथुरापुरी तथा श्रीब्रजभूमि में रमते हुये सबको सुख संतोष देते थे; परम

धर्म दृढ़ करने के लिये श्रीगुरुदेव की अति अलौकिक सेवा की; आपने अति मधुर वचन सुनाके ठौर २ में हरिभक्तों को सुख दिया । सब संत महंत और समस्त सज्जनलोग श्रीनागा जी का यश नित्यही विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं ॥

"चतुरदास" बृन्दाविपिन बास कियौ भलि भांति ॥"

(दो०)"तृणतें नीचौ आपको, जानि बसे "बन" माहिं।
मोह छाड़ि ऐसे रहे, मनौं चिन्हारिहु नाहिं ॥"

(७१२) टीका । कवित्त (८४३–७१२ = १३१)

आयो गुरु गेह यों सनेह सों लै सेवा करैं, धरैं सांचो भाव हियें अति मति भीजियै । टहल लगाय दई नई रूपवती तिया, दियौ वासों कहि "स्वामी कहै सोई कीजियै"॥ देख्यो उरझाव अंग संगको लखाव भयौ दयौ घर धन वधू "कृपा कर लीजियै" । धाम पधराय, सुख पायकै, प्रनाम करी, धरी व्रजभूमि उर बसे, रस पीजियै ॥ ५६४ ॥

(६२९–५६४ = ६५)

वार्तिक तिलक ।

आपके श्रीगुरु जी घरमें आये, अति सच्चे सनेह भाव से मति को भिगोकर सेवा करने लगे; और नवीन अवस्था वाली अति रूपवती अपनी धर्मपत्नी को गुरुजी के टहल में लगाकर कह दिया कि "जो स्वामीजी की आज्ञा हो सोई करना"। सब काल एकट्ठे रहने से अंग संगका उरझाव होजाना जान लिया। तब घर और धन तथा अपनी स्त्री श्रीगुरु महाराज को सब देकर विनय किया कि "ये सब

कृपा करके लीजिये"। अति आनन्दित हो उन्हें गृहमें पधरा, साष्टांग प्रणाम कर, आज्ञा मांग, आकर, ब्रज भूमिमें वस, श्री भगवत प्रेम रस को पान किया करते।

(दोहा)" गजधन, गोधन, भूमिधन, हेम, रत्न धन खान।
जबआवत संतोष धन, सब धन धूरि समान॥"

(७१३) टीका। कवित्त (८४३–७१३ = १३०)

श्रीगोबिंदचंद जू को भोर ही दरस करि; के सब सिंगार; राज भोग नंदग्राम मैं। गोवर्धन, राधाकुंड ह्वैके, आवैं बृंदावन, मन मैं हुलास नित करैं चारि जाम मैं॥ रहे पुनि पावन पै भूखे दिन तीन, बीते आये दूध लै प्रवीन, एऊ रंगे स्याम मैं। मांग्यौ "नैकु पानी ल्यावौ;" फेर वह प्रानी कहां? दुख मति सानी, निसि कही "कियौ काम मैं"
॥ ५२५ ॥ (६२९–५६५ = ६४)

वार्त्तिक तिलक।

आप वृन्दावन में नित्य आनन्द हुलास से प्रदक्षिणा पूर्वक इस प्रकार विरचते थे कि श्री गोविन्द देवजी की भोर मंगला आर्ती का दरशन, और श्रीकेशवदेव जी की शृंगार आर्ती का दरशन कर, राज भोग नन्दग्राम में देखते। गोवर्द्धनजी राधाकुंड होकर चौथे पहर वृन्दावन में आजाते थे। एकबेर पावन मानसरोवर पर दैव योग से तीन दिन भूखे रहगये। तब भक्त वत्सल प्रवीण श्री नन्दकुमार जी ने सुन्दर मनुष्यरूप से दूध लाके पान कराया। श्री चतुरदास जी को वह रूप बड़ा प्यारा लगा। बोले कि "थोड़ा जल भी पिलादो"।

आप पानी लेनेको गये: फिर कहां देख पड़ें ? उस रूप के वियोग से नागा जी को बड़ा दुख हुआ तब रात्रि को स्वप्न में श्री प्रभु ने कहा कि " वह दूध मैं ही तुमको पिला गया था " ॥ (सवैया) डोलत हैं इक तीरथ, एकानि बार हजार पुरान बके हैं । एक लगे जप में, तपमें, इक सिद्धि समाधिन में पटके हैं ॥ बूझि जो देखत हौ, रसखानि जु, मूढ़ महा सिगरे भटके हैं । सांचे हैं वे, जिन आपन ज्यौं, इहि सांवरो श्याम पै वारि छकें हैं " ॥ १ ॥

(६१४) टीका । कवित्त (८४३-६१४ = १२९)

"पानी सौं न काज, ब्रजभूमि मे विराज दूध, "पीवौ घर घर, " यह आज्ञा प्रभु दई है । " एतौ ब्रजवासी सब क्षीर के उपासी, कैसें मोको लन देहैं ? " कही " दे हैं; " सुनी नई है ॥ डोलै धाम धाम श्याम कह्यौ जोई मानि लियौ, दियौ परचे हूं, परतीत तब भई है । जहां जा छिपावैं पात्र, बेगि आप ढूंढि ल्यावैं, अति सुख पावैं, कीनी लीला रसमई है ॥ ५६६ ॥ (६२९--५६६ = ६३)

वार्त्तिक तिलक ।

" और, तुमने जल मांगा सो मैंने इसलिये नहीं दिया कि, अब जल से कुछ प्रयोजन मत रक्खो, बृजभूमि में विराजमान हो ब्रजवासियों के घर घर में जाकर दूधही पिआ करो " प्रभु की ऐसी आज्ञा सुन स्वप्न ही में आपने विनय किया कि " ये ब्रजवासी सब अतिप्रेम से दूध ही की उपासना करते हैं । (अर्थात् यशोदा जी ने दूध के हेतु आपही को गोद से उतार दिया था);

(सवैया) " जप, यज्ञ, सुदान, सुमानै करैं, बहु कूप, रु वापी, तड़ाग बनावैं । करैं व्रत, नेम, सुइन्द्रियनिग्रह, उग्रह योग समाधि लगावैं ॥ कहै रसखानि, हृदय तिनके कबहूं नहिं जो सुपने महँ आवे । ताहि अहीरनकी छोहरियां छछिया भर छांछ पै नाच नचावैं ॥ १ ॥ सो मुझे व लोग, हे सुखसागर ! दूध कैसे लेनेदेगीं । " प्रभूने कहा " हमारी आज्ञा है, देंगी । " आपकी नवीन आज्ञा सुनकर मानली ।

उस दिनसे सबके घर घर जाके दूध लिया करते थे । ब्रजवासियोंसे कह दिया कि " मुझे नन्दकुमार की आज्ञा है दो, " किसी किसी ने नहीं दिया उनको आपने परचोदिया जैसे उनका सम्पूर्ण दूध फटगया वा कीड़ा पड़गया, एवमादि तब लोगोंको प्रभुकी आज्ञाकी प्रतीति हुई; दूध देनेलगे ॥ कोई २ हांसी से दूधका पात्र छिपा देती थीं, तब श्री नागा जी स्वयं जाके ढूंढ़ लेते । तब सब बड़ा सुख मानती थीं इस प्रकार की रसमयी लीला आपने की ॥

(७१९) मूल । छप्पै (८४३-७१९ = १२८)

माधूकरी मांगि सेवैं भगत, तिनपर हौं बलिहार कियौ ॥ गोमा¹ परमानन्द², प्रधान³ द्वारिका⁴, मथुरा⁵ खोरां । कालख सांगानेर भलौ भगवान⁶ का जोरा ॥ वीठल⁷ टोंडे, खेम⁸ पंडा गुनो रै गाजै । श्यामसेन⁹ के बंश, चीधर¹⁰ पीपां रवि राजै ॥ जैतारनें¹¹ गोपाल¹² के, केवल¹³ कूबे मोल लियौ । माधूकरी

मांगि सेवै भगत तिनपर हौं बलिहार कियो ॥ ॥ १४९ ॥ (२१४–१४९ = ६५)

वार्तिक तिलक ।

जिन जिन महात्माओं ने माधूकरी मुट्ठी भिक्षा मांग कर हरिभक्तों की सेवा की, उनके ऊपर मैं अपना तन मन धन सब बलिहारी करताहूं।

(१) गोमा में परमानन्दजी
(२) द्वारिकामें प्रधान भक्तजी
(३) मथुरा में खोरा भक्तजी,
(४।५) कालख में और सांगानेर में भगवान का भला जोड़ा अर्थात् एक भगवान जी कालख में दूसरे भगवानजी सांगानेर में ।
(६) टोड़े में वीठलजी,
(७) गुनौर में खेम पंडा, भक्तों की सेवा कर सुखसे गर्जतेथे
(८) सेन भक्त के वंश में श्यामदासजी ।
(९।१०) औचीधड़जी तथा श्री पीपाजी, दोनों संतसेवी सूर्य के समान प्रकाशमान
(११।१२) जैतारनजी के और गोपाल जी के भी मैं वलिहारी जाता हूं
(१३) श्री केवलदास कूबाजी ने अपने कूबरही से मुझे मोल लेलिया ।

(२२४) श्री कूबाजी (केवलदास)

(७१६) टीका । कवित्त (८४३–७१६ = १२७)

कहत कुह्मार, जगकुलनिसतार कियो, "केवल" सुनाम

साधु सेवा अभिराम है। आये बहु संत, प्रीति करी छै अनंत, जाको अंत कौन पावे, ऐपै सीधो नहीं धाम है॥ बड़ीए गरज, चले करज निकासिबेकों, बनिया न देत, "कुवां खोदौ कीजै काम है"। कही बोल कियौ तोल लियौ नीके रोल करि, हित सो जिवाँये जिन्हे प्यारो एक स्याम है॥५६७॥ (६२९–५६७ = ६२)

"ग़रज़" = غرض = आवश्यकीय चाह। "क़र्ज़" قرض = ऋण, उधार।

वार्त्तिक तिलक।

आपको सब जगत कुम्हार जाति कहते हैं श्री "केवल" जी नाम था आपने अपने कुलभर बरन जगत भर को भव-सागर के पार उतार दिया, अति उत्तम रीति से साधु सेवा करते थे। एक दिवस बहुत से संत घरमें आये, देख अति अनंत प्रीति की; परन्तु घरमें अन्न सीधा कुछ नहीं। बड़ी चाहना से ऋण लेनेको गये बनियोंने नहीं दिया, एक ने कही कि "जो मेरा कुआं खोद देने को वचन दो तो मैं दूं।"

आपने कहा "बहुत अच्छा खोद दूंगा," उसी वचन पर सब सामग्री लाकर, जिन सन्तों को एक श्रीसीताराम जी ही प्यारे हैं, उनको बड़े प्रेम से भोजन कराया।

श्रीअयोध्या जी लक्ष्मण क़िला तथा सारन चिरांद में जो स्थान हैं, वहां के महात्मा, "श्री केवलकूबा जी ही के द्वारा" के हैं।

(७१७) टीका। कवित्त (८४३–७१७ = १२६)

गए कुवा खोदिबेकों, सुवाज्यौं उचारैं नाम, हुवा काम जान्यौ वनिभयौ सुख भारी है। आई रेत भूमि, झूमिमाटी गिरि दबे वामै, केतिक हज़ार मन होत कैसे न्यारी है॥

सोक करि, आये धाम, "राम" नाम धुनि काहूं कान परी, बीत्यौ मास, कही बात प्यारी है । चले वाही ठौर स्वर सुनि प्रीति भौंर परे, रीति कछु और, यह सुधि बुधि टारी है ॥ ५६८ ॥ (६२९–५६८ = ६१)

वार्त्तिक तिलक ।

संतों के चले जाने पर आप जाकर कुआं खोदने लगे, और मुख से शुक (तोते) के समान सप्रेम श्रीसीताराम नाम उच्चारण करते, बहुत प्रसन्नता पूर्वक नीचे तक खोद लेगये । " कीर ज्यों नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकी नाथ पढ़ायो " कुआं तय्यार होते देख बनिया और भी अति आनन्दित हुये ।

इतने ही में नीचे वालू मिली बस ऊपर से टूटके लाखन मन मिट्टी आपके ऊपर गिरपड़ी ! वह कैसे निकल सके? सबों ने जाना कि दबकर मरगये; शोक करते चलेआये ।

एक मास पीछे उस ठिकाने कोई गया उसके कानों में श्रीराम नाम की धुनि पड़ी, गांव में दौड़ आया सुखदप्रिय समाचार सुनाया, सब लोग आकर वहां श्रीराम नाम का शब्द सुन मानों प्रीत के भँवर में पड़गये । सब की तनमन की सुधि भूलि गई, क्योंकि वह नामोच्चारण और ही सप्रेम रीति से सुनाई देता था ॥

(७१८) टीका । कवित्त (८४३–७१८ = १२५)

माटी दूर करी, सब पहुंच निकट जब, बोलिकै सुनायौ " हरि " बानी लागी प्यारियै । दरसन भयो, जाय पाय

लपटाय गए, रही मिहराब सी ठहै, कूबहू निहारियै॥ धर्‌यो जलपात्र एक, देखि बड़े पात्र जाने, आने निज गेह पूजा लागी अति भारियै। भई द्वार भीर, नर उमड़ि अपार आये, महिमा बिचारि बहु संपति लै वारियै॥ ५६९॥ (६२९–५६९ = ६०)

"मेहराब्" = محراب = गोलशून्य, धनुषाकार आकाश

"दूर" = دور = अलग।

वार्तिक तिलक।

गांव के सब लोग लगकर अति शीघ्रता तथा सावधानता से हाथों हाथ मिट्टी निकालकर आपके निकट पहुँचे। "हरेराम हरेराम" यह वाणी कह कर सुनाया, अति प्यारी लगी; श्रीकेवल जी का दरसन कर लोग चरनोंमें लिपट गये देखा कि श्रीरामकृपा से नीचे गुफा (मेहराब) सरीखा हो रहाथा, नीचा बहुत था; इससे एक मास भर वहीं बैठे रह गए इससे आपकी पीठ में कूबर होगया। "कूबा जी" कहलाने लगे।

आपके आगे एक जल भरा पात्र रक्खा हुवा था। सबने जाना कि ये श्रीरामजी के बड़े कृपापात्र हैं, सो निकालके बाजा बजाते बड़े प्रेम से घर लाकर लोगोंने विराजमान किया। सबने आप को बड़ी भारी पूजा चढ़ाई। एक एक से सुनकर बहुत से लोग आये द्वार में बड़ीही भीड़ हुई। श्रीकेवल जी की महिमा विचार कर लोगोंने बहुतसा धन चढ़ाया, और नेवछावर करके लुटा भी दिया।

(७१९) टीका। कवित्त (८४३-७१९ = १२४)

सुंदर स्वरूप श्याम ल्याये पधरायबेकौं, साधु निज धाम आय कूबाजू के बसे हैं। रूपकों निहारि मन मै विचारि कियौ आप "करैं कृपा मोंकों प्रभु" अचलह्वै लसे हैं ॥ करत उपाय संत टरत न नैक किहूँ कहीजू अनंत हरि रीझे स्वामी हसे हैं। धर्‍यौ "जानराय" नाम जानि लई हीकी बात, अंग मै न मात सदा सेवा सुख रसे हैं॥५७०॥(६२९-५७० = ५९)

वार्तिक तिलक।

श्रीकेवल जी "कूबा जी" विख्यात हो, मनमानी संत सेवा करने लगे। कोई संत प्रभुकी बहुत सुन्दर श्याम मूर्ति अपने मंदिर में पधराने को लिये जाते थे; मार्ग में कूबाजी के यहां निवास किया, आपने मोहनी स्वरूप को देख, मनमें बिचार कर, प्रार्थना की कि "प्रभु मुझ पर कृपाकर रहजाते, तो भला था।" आप की प्रार्थना सुन प्रभु वहां हीं अचल होगये; वे संत उठाने के लिये लाख उपाय करने लगे पर किंचित् भी नहीं टरे। श्रीकेवल जी ने हँस के कहा "अजी! हरि अनन्त हैं आप के उठाये नहीं उठेंगे, मुझ पर प्रसन्न होकर यहां हीं रहेंगे।" संत आप का वचन सत्य जान, छोड़कर चलेगये। कूबा जी ने अति प्रसन्न होकर कहा कि मेरे हृदय की बात जानगये इस्से आपका नाम "जानराय" जी है, प्रभुको पधराके सुख से पग सेवा करने लगे।

(७२०) टीका। कवित्त (८४३-७२० = १२३)

चले द्वारावति, "छाप ल्यावैं," यह मति भई; आज्ञा प्रभु दई, फिरि घरही को आये हैं। "करौ साधु सेवा, धरौ भाव दृढ़ हिये मांझ, टरौ जिनि कहूं, कीजै जे जे मन भाये है।" गेह ही में संख चक्र आदि निज देह भए, नये नये कौतुक प्रगट जग गाये हैं। गोमती कौ सागर सौ संगम सो रह्यौ सुन्यौ, सुमिरनी पठायकै यों दोऊ ले मिलाये हैं॥ ५७१॥ (६२९-५७१ = ५८)

वार्तिक तिलक।

कूवा जी के इच्छा हुई कि 'द्वारिका जी जाके शंख चक्रादिक छाप ले आऊं, सो घर से चल दिये। भगवत की आज्ञा हुई कि "तुम हृदय में दृढ़ भाव रखकर साधु सेवा करो; यहां से न टरो कहीं नहीं जाव, तुम्हारे मन में जो जो अभिलाषा होगी सो सब यहां ही पूर्ण हो जायगी"।

आज्ञा मान लौट के घरही चले आये। श्रीजानराय जी के समीप ही शंख चक्रादिक छाप आपके बाहों में स्वतः अंकित होगये। इत्यादिक नवीन २ कौतुक तथा चमत्कार प्रभु कृपा से प्रगट देख सब जगत यश गान करने लगा। गोमती और समुद्र के बीच में बड़ी रेती है, समुद्र की लहर आने से दोनों का संगम हो जाता है; एक समय लहर आना संगम होना बन्द होगया। श्री केवल जी ने सुना कि संगम न होने से माहात्म्य की हानि हुई, और रेती उड़ने से वहां के लोग बड़े दुखी हैं।

तब आपने श्रीसीताराम नाम स्मरण करने की अपनी सुमिरनी माला भेज दी उसको रख देने से गोमती समुद्र का संगम पूर्ववत होने लगा ।

(७२१) टीका । कवित्त (८४३ –७२१ = १२२)

भए शिष्य शाखा, अभिलाषा साधु सेवाही की, महिमा अगाध, जग प्रगट दिखाई है । आए घर संत, तिया करति रसोई, कोई आयौ वाकौ भाई, ताकौं खीर लै बनाई है ॥ कूबा जी निहारि जानी याको हित दूसरों सौ कीजियै बिचार एक सुमति उपाई है । कही " भरि ल्यावौ जल " गई डरि कल पै नलई तसमई सब भक्तनि जिमाई है ॥५७२॥ (६२९–५७२ = ५७)

वार्तिक तिलक।

श्रीकेवल जी के अनेक शिष्य और प्रशिष्यों की शाखाएं हुईं; उन सब को साधु सेवा ही की अभिलाषा उत्तरोउत्तर बढ़ी; क्योंकि श्रीकूबाजी ने संत सेवा की अथाह महिमा प्रत्यक्ष दिखा दी । एक दिवस गृह में संत आये दैव संयोग से उनकी स्त्री का भाई भी आ पड़ा; आपकी स्त्री ने सन्तों के लिये नित्य कीसी रसोई की, पर अपने भाई के लिये खीर बनाई; कूबा जी ने यह चरित्र देखकर विचारा इसकी प्रीति अपने भाई मे है, इससे मैं ऐसा उपाय करूं कि अपने प्यारे भाईयों को खीर खिला दूं, नारी को आज्ञा दी कि " जा जल भरला " वह गई परन्तु डरती हुई, कि ' खीर खिला न दें, ' आपने तुलसी छोड़ प्रभु को अर्पण कर सब तसमई हरि भक्तों को पवादी ।

(७२२) टीका। कवित्त (८४३-७२२=१२१)

बेगि जल ल्याई, देखि आगिली बराई हियें, झांकै मुंह भाई, दुख सागर बुड़ाई है। बिमुख बिचारि, तिया कूबाजू निकारि दई, गई पति कियौ और, ऐसी मन आई है॥ पन्यौई अकाल बेटा बेटी सो न पाल सकैं, तकैं कोऊ ठौर मति अति अकुलाई है। लियें संग कन्यौ जोई, पुत्र सुता भूख भोई, आय परी झींथड़ा में स्वामी को सुनाई है॥ ५७३॥ (६२९--५७३ = ५६)

वार्त्तिक तिलक।

जल ले बहुत त्वरा से आके संतों को खीर पाते देख क्रोधाग्नि से जलती हुई, भाई का मुख देख दुख समुद्र में डूबगई। आपने उसको विमुख पा, घर से निकाल दिया।

उसने जाके दूसरा पति करलिया और उससे बेटी बेटे हुये। एक समय दुःकाल पड़ा, वह पुरुष अपने ही भूखों से मरने लगा, तब इसके बेटी बेटों को कैसे पाल सकै। निदान, अति व्याकुल हो, वह उस पति और बेटी बेटों को लिये भूख से पीड़ित "झींथड़ा" में आके रोरोकर स्वामी जी को विनय सुनाने लगी।

(७२३) टीका। कवित्त (८४३-७२३=१२०)

नाना बिधि पाक होत, संत आवैं जैसें सोत, सुख अधिकाई, रीति कैसे जात गाई है। सुनत बचन वाके दीन दुख लीन महा, निपट प्रवीन मन मांझ दया आई है॥ "देखि पति मेरौ और तेरौ पति देखि याहि कैसे कै निबाहि सकै परी कठि-

नाई है । रहौ द्वार झार्यौ करौ पहुंचै अहार तुमै" महिमा निहारि दृग धार लै बहाई है ॥५७४॥ (६२९–५७४ = ५५)

वार्तिक तिलक ।

आपके यहां नित्य श्रीसीताराम जी के लिये अनेक प्रकार की रसोई होरही है, चारों ओर से जैसे समुद्र में नदियां आती हैं इसी प्रकार संत आते हैं; आपकी सेवा की रीति और आनन्द की अधिकता कैसे कही जासक्ती है ?

दुख से भरे दीन वचन उस स्त्री के सुन, आप साधुता में अति प्रवीन तो थे ही, मन में दया लाकर बोले कि "री मूर्ख ? देख मेरे पतिका प्रभाव कि कैसा आनन्द हो रहा है; और अपने पतिको भी देख कैसी कठिनता में पड़रहा है । अच्छा, बाहर पड़ीरह, द्वार में झाड़ू लगाया-कर, तुम सब को खाने को मिला करेगा । "

आपकी महिमा देख भाग्यहीना रोनेलगी ।

(७२४) टीका । कवित्त (८४३–७२४ = ११९)

कियौ प्रतिपाल तिया पूरी कौ अकालमास भयौ जब समै बिदा कीनी उठिगई है । अति पछितात वह बात अब पावै कहां ? जहां साधु संग रंग सभा रसमई है ॥ करैं जाको शिष्य, संत सेवा ही बतावैं "करौ जो अनंक रूप गुन चाह मन भई है । " नाभाजू बखान कियौ, मोकों इन मोल लियौ, दियौ दरसाय सब लीला नित नई है ॥ ५७५ ॥ (६२९–५७५ = ५४)

वार्त्तिक तिलक।

जबतक अकाल के मास पूर्ण नहीं हुये, तबतक पति पुत्रों के सहित उस स्त्री को भोजन दिलाया; फिर समय होने पर बिदा करादिया; चली गई। यह रसमई संत सभा के संगका प्रेम रंग देख, उसने मनमें अति पश्चात्ताप किया। परन्तु वह बात अब कैसे पासकै?

श्रीकूबा जी जिसको शिष्य करते, उसको संत सेवाही का इस प्रकार उपदेश देतेथे कि "जो तुम्हारे मनमें भगवत के रूप गुणों की चाह हुई है तो प्रीति से यही करो।"

श्रीप्रियादास जी कहते हैं कि जो श्रीनाभास्वामी जी ने बखान किया, "केवल कूबै मोल लियो" सो मैंने आपकी नित्य नवीन लीला कहकर दरसादी कि श्रीकेवल जी संत सेवा ही केलिये "कूबा" हुये। संतों की जय, संतसेवियों की जय॥

---

(७२५) मूल। छप्पै (८४३-७२५=११८)

श्री अग्र अनुग्रह तें भये शिष्य सबै धर्म की ध्वजा॥ जंगी, प्रसिद्ध, प्रयाग[2], बिनोदी[3], पूरन[4], वनवारी[5]। नरसिंह[6], भलभगवान[7], दिवाकर[8], दृढ़व्रत धारी॥ कोमल हृदे किशोर[9], जगत[10], जगन्नाथ[11], सलूंधो[12]। औरौ अनुग उदार खेम[13], खीचीं[14], धरम धीर[15], लघुऊंधो[16]॥ त्रिबिधि ताप मोचन सबै सौरभ प्रभु निज सिर भुजा। श्रीअग्र हनुग्रह तें भये शिष्य

सर्व धर्म की धुजा ॥१५०॥ (२२४–१५० = ६४)

वार्त्तिक तिलक ।

स्वामी श्रीअग्रदासजी की कृपा अनुग्रह तें, उनके ये सब शिष्य भागवतधर्म की ध्वजा के सरीखे हुए। जिनके मस्तक पर प्रभु समर्थ " सौरभ " अर्थात् श्रीअग्रस्वामी जी ने अपना करकमल रक्खा वे सब अपने, तथा शरणागतजीवोंके, तीनों ताप छुड़ानेवाले हुये; जिनमें परम प्रसिद्ध

(१) श्रीजंगी जी
(२) श्रीप्रयागदास जी
(३) श्रीविनोदी जी
(४) श्रीपूरनदास जी
(५) श्रीवनवारीदास जी
(६) श्रीनरसिंहदास जी
(७) श्रीभगवानदास जी
(८) श्रीराम भजन दृढ़ व्रत धारण करनेवाले श्रीदिवाकर जी
(९) कोमल हृदयवाले । श्रीकिशोर जी
(१०) श्रीजगतदास जी
(११) श्रीजगन्नाथदास जी
(१२) श्रीसलूधो जी
(१३) श्रीअग्रदेवानुगामी (शिष्य) श्रीखेमदास जी
(१४) श्रीखींची जी
(१५) श्रीधर्मदासजी परमधीर
(१६) श्रीलघुऊधो जी । इत्यादि

(७२६) मूल । छप्पै (८४३–७२६ = ११७)

भरतखंड भूधर सुमेर टीला[१] लाहाँ[२]की पद्धति प्रगट ॥ अंगज परमानंद[३] दास जोगी जग जागै। खरतर[४], खेम[५], उदार ध्यान[६], केसो हरिजन अनुरागै ॥ सस्फुट त्योला शब्द लोहकर वंश उजा-

गर। हरीदास[९] कपि प्रेम, सबै नवधा के आगर॥
अच्युत कुल सेवैं सदा दासन तन दसधा अघट।
भरतखंड भूधर सुमेर टीला लाहाकी पद्धति प्रगट
॥ १५१ ॥ (२१४–१५१ = ६३)

वार्तिक तिलक

(१) भरतखंड रूपी सुमेर पर्वत के टीला (शिखर) के समान श्री "टीला" जी भक्त हुये।

(२) उनके शिष्य श्री "लाहा" जी हुये: इनकी पद्धति कहिये शिष्य–परम्परा परम प्रकाशमान हुई।

(३) आपके अंगज (पुत्र) श्रीपरमानन्ददास जी जगत में विख्यात योगी हुये।

(४–७) अति उदार खरतरदास[४] जी, खेमदास[५] जी, ध्यानदास[६] जी, केशौदास[७] जी, इन सबों का श्रीहरिभक्तों में बड़ा ही अनुराग हुआ।

(८) सस्फुट प्रसिद्ध त्योला शब्द अर्थात् "त्योला" इति विख्यात लोहार जाति के वंश में जन्म लेकर उसको उजागरकिया।

(९) और हरीदास जी का कपि श्रीहनुमान जी में बड़ा प्रेम था, नवधा भक्ति में सब ही निपुण हुये।

ये सब अपने देह में दासता को धारण कर अच्युत कुल वैष्णवों की सेवा करते थे, इस्से भगवत की अनपायनी प्रेमाभक्ति को प्राप्त हुये।

(२२५) श्रीकन्हर जी (श्रीविठलसुव)।

(७२७) मूल छप्पै। (८४३-७२७=११६)

मधुपुरी महोछौ मंगल रूप "कान्हर" कैसो को करै॥ चारि बरन आश्रम रंक राजा अन पावै। भक्तनि कौ बहुमान बिमुख कोऊ नहिं जावै॥ बीरी चन्दन बसन कृष्ण कीरतन बरखै। प्रभुके भूषन देय महा मन अतिसय हरखै॥ "बीठल" सुत विमल्यौ, फिरै दास चरण रज सिर धरै। मधुपुरी महोछौ मंगलरूप "कान्हर" कैसो को करै॥ १५२॥ (२१४-१५२=६२)

वार्तिक तिलक।

मथुरापुरी में मंगलरूप महा उत्सव "श्रीकान्हर जी" के समान और कौन करसक्ता है? जिस उत्सव में चारो वर्ण चारो आश्रम के जन, राजा से रंक तक सबको सादर भोजन अन्न मिलता था। और भगवत भक्तों का अति सनमान से सत्कार होताथा, विमुख कोई नहीं जाताथा। "दीया जगत अनूप है, दियाकरौ सब कोइ। घरको धर्‌यो न पाइयै, जो कर दिया न होय"॥ सभा समाज में चन्दन माला बीड़े मेवादिक और वस्त्र दिये जाते थे। फिर गुणीजन श्रीकृष्ण कीर्तन यशगान की वर्षा करतेथे; उस समय श्रीकान्हर जी प्रभु के भूषण उतार गुणीजनों को देकर मन में अति आनन्दित होते थे। श्रीविठल जी के परम विमल पुत्र श्री कान्हर जी संतों के चरण की रज शीशपर धारण करने

के लिये प्रमुदित चारों ओर फिरते थे।

(२२६) श्रीनीवा जी।

(७२८) मूल। छप्पै (८४३-७२८ = ११५)

भक्तनि सों कलिजुग, भलैं निवाही "नीवा," खेतसी॥आवहिं दास अनेक उठि सु आदर करि लीजै। चरण धोय दंडौत सदन में डेरा दीजै॥ ठौर ठौर हरि कथा हृदै अति हरिजन भावैं॥ मधुर वचन * मुह लाय बिबिधि भांतिन्ह लुलडावै॥ सावधान सेवा करै निर्दूषन रति चेतसी॥ भक्तनि सों कलिजुग भलैं निवाही नीवा खेतसी ॥ १५३ ॥ (२१४-१५३ = ६१)

*." महु " पाठभेद।

वार्तिक तिलक।

कलियुग में श्रीनीवा जी ने भगवतभक्तों से प्रीति रीति खेत सरीखी * भले प्रकार निर्वाह किया; अर्थात् जैसे किसान * किसी विघ्न से भी खेतकी प्रीति नहीं छोड़ता ऐसेही आपके गृह में अनेक भगवतदास आते थे उन सब को उठकर अति आदर पूर्वक आगेसे ले दंडवत प्रणाम कर चरण धोके गृह में आसन कराते थे आपको हरिभक्त बहुत ही प्यारे लगते, सब ठिकाने में हरिकथा बैठाकर मधुर वचन कह प्रसन्न करते, बहुत प्रकार से लाड़ लड़ाते थे। नीवाजी के चित्त में निर्दूषन प्रीति थी इससे अति सावधानता से

संतों की सेवा करते थे ।

*(दो०) " हरिया हरिसों प्रीति करु, ज्यों किसान की रीति ।
दाम चौगुनो, ऋण घनो, तऊ खेत सों प्रीति ॥ १ ॥
राम लगावहु आप में, ज्यों किसान मन खेत ।
राम चरण सीतोष्ण सहि, निशि दिन तहां सचेत ॥ २ ॥

(२२७) श्री तूबरभगवान् (भगवान तूवर सेठ)

(१२९) मूल । छप्पै ८४३–१२९ = ११४)

वसन बढ़े कुंती वधू, " त्यौं तूंबर भगवान " कै ॥ यह अचिरज भयौ एक खांड घृत मैदा वरखै। रजत रुक्म की रेल सृष्ट सबही मन हरखै॥ भोजन रास बिलास कृष्ण कीरतन कीनौ। भक्तनिकौ बहुमान दान सबही कौ दीनौ ॥ कीरति कीनी भीमसुत, सुनि भूप मनोरथ आनकै। बसन बढे कुन्ती वधू त्यों " तूबर भगवान् " कै॥ ॥ १५४ ॥ (२१४–१५४ = ६०)

वार्त्तिक तिलक ।

जैसे श्रीद्रौपदीजी के वस्त्र बढ़े थे, ऐसे ही "तूंबर" जाति के सेठ भक्त " श्रीभगवानदास जी " के अन्न द्रव्यादि सब उत्सव के पदार्थ प्रभु कृपा से बढ़े । यह एक आश्चर्य हुआ कि जो मितका पदार्थ रक्खा था सो खांड़ घृत मैदा आदिक देते समय में इतना बढ़गया कि वर्षासी हुई । और सुवर्ण रूपकी मुद्रा भी रेलारेल दीगई। सम्पूर्ण सृष्टिके लोग देखके

मनमें हर्षित हुये। भोजन कराते समय भी सब पदार्थ बढ़े, फिर रासविलास श्रीकृष्ण कीरतन कराया और भगवत भक्तों को बहुमान्य से सब पदार्थ अर्पण कर सब को दान दिया। भीम जी के पुत्र (श्रीभगवानदास) ने मथुरा में ऐसी कीर्ति की कि जिस्को सुनकर राजा लोग मनोर्थ करने लगे कि ऐसी करनी हम भी करैं परन्तु बनैगी नहीं॥

(दो०) "करत महोच्छव प्रेमभर, बहुबिधि करत समाज।
षटरस असन जिंवाय जन, देत बसन सिर ताज"॥ १॥

(७३०) टीका। कवित्त (८४३–७३० = ११३)

बीतत वरष मास, आवैं "मधुपुरी," नेम प्रेमसों महोछौ रास हेम हीं लुटाइये। संतनि जिवाँय, नाना पट पहिराय, पाछे द्विजन बुलाय, कछु पूजैं, पै न भाइये॥ आयौ कोऊ काल, धन माल जा विहाल भए, चाहैं पन पार्‍यौ आए "अलप कराइये"। रहे विप्र दूषि सुनि भयौ सुख भूख बढ़ी, आयौ यों समाज करौ ख्वारी मन आइये॥ ५७६॥ (६२९–५७६ = ५३)

ख्वारी = خواری अनादर, मानहानि। "वेहाल" = بےحال = कुदशा को प्राप्त।

वार्तिक तिलक।

श्रीभगवान सेठ जी का नियम था कि बारह महीना बीते गृह से बहुत सा द्रव्य ले, मथुरा जी में आकर प्रेम से महोत्सव, रासलीला करते सुवर्ण लुटाते थे; फिर संतों को भोजन कराके अनेक प्रकार के वस्त्र पहिराते थे। पीछे, ब्राह्मणों को बुलाकर कुछ पूजन करते।

परन्तु ब्राह्मण प्रसन्न नहीं होते थे। कोई ऐसा काल आपड़ा कि धन सम्पत्ति घटने से और ही दशा होगई, तथापि अपना नियम नहीं छोड़ा। थोड़ा द्रव्य ले, लाकर विनय किया कि "थोड़ासा नियम करा दीजिये"। ब्राह्मण लोग प्रथम से दुखित तो थे ही, सुनके मनमें सुखी हो उनने विचार किया कि "भला हुआ, आओ, अब इस्का उत्सव समाज सब बिगाड़ देंगे"॥

(७३१) टीका। कवित्त (८४३–७३१ = ११२)

अति सनमान कियौ, ल्याए जोई सौंपि दियौ, लियौ गांठ बांधि, तब विनती सुनाइयै। "संतनि जिंवावौ, भावै रास लै करावौ, भावै जेंवौ सुख पावौ, कीजै बात मन भाइयै"॥ सीधौ ल्याय कोठे धर्‍यौ, रोक हो, सो थैली भर्‍यौ, द्विजन बुलाय देत कि हूं निघटाइयै। जितनौ निकासैं ताते सौगुनौ बढ़त और, एक एक ठौर बीस गुनौ दै पठाइयै॥ ५७७॥ (६२९–५७७ = ५२)

वार्त्तिक तिलक।

आप जहां टिके थे उन पंडाओं को बड़े सनमान से, जो कुछ धन लाये सो सौंप दिया; उन्होंने जब गांठि में बांध लिया, तब आपने उनको विनय सुनाया कि "इतना ही धन है, इसी में चाहे संतों को भोजन कराइये, चाहे रासलीला कराइये, चाहे आप सब ब्राह्मण लोग भोजन कीजिये। जो आपके मनमें रुचै और सुख होय सोई कीजिये।"

वे उस द्रव्य से सीधा मंगाकर कोठार में रख, और रोकड़

रुपये थैली में भर, प्रथम ब्राह्मणों ही को बुलाके सीधा और दक्षिणा देने लगे। मनमें यह ठीक किया कि "शीघ्र ही सब चुक जाय तौ इसका दुर्यश होय"। परन्तु प्रभु कृपा से जिस वस्तु में से जितना निकालते थे उसका सौगुना वह वस्तु बढ़ती जाती थी, एक एक ठिकाने में बीस बीस गुना दिये, भेजे, तौ भी सब पदार्थ बनाही रहा। उसी में वैष्णवों का भी भोजन, और रासलीला भी हुई; तथापि पदार्थ बनाही रहा॥ भक्त-मनोरथ-पूरक कृपालु की जय॥

छ०—" मुनि सठ द्विज मन हर्ष, लगे बांटन धन रासा।
इक छटांक जहँ देन देहिं तेहि हरषि पचासा॥
यहि विधि धन पट असन कुटिल अति भूरि लुटायौ।
नेकु न घटइ साँज, सबन मन बिस्मय पायौ॥
पुनि परेउ चरण " अवगुण छमहु, " प्रभुता बढ़ी अपार जब।
लज्जा राखी हरि भगत की; भए शिष्य बहु आय तब॥ "

विदित हो कि इस (भगवान्) नाम के भी भक्त कई हुए हैं।

(२२८) श्रीजसवन्त जी॥

(७३२) मूल। छप्पय (८४१—७३२ = १११)

जसवंत भक्ति जयमाल की, रूडा राखी राठवड़॥ भक्तनि सों अति भाव निरंतर, अंतर नाहीं। कर जोरे इक पाय, मुदित मन आज्ञा माहीं॥ श्रीवृन्दावन वास, कुंज क्रीडा रुचि भावै। राधावल्लभ लाल नित्त प्रति ताहि लड़ावै॥ परम धरम नवधा, प्रधान, सदन सांच निधि प्रेम

जड़। "जसवंत" भक्ति "जैमाल" की रूढ़ा राखी राठवड़॥ १५५॥ (२१४-१५५=५९)

वार्त्तिक तिलक।

राठवड़ अर्थात् "राठूर जाति" के क्षत्री "श्रीजसवन्त सिंह जी," ने अपने बड़े भाई "श्रीजयमालसिंह जी" की भक्ति की रूढ़ा रक्खी अर्थात् उनके पीछे उस भक्ति को ग्रहण कर सुन्दर रक्षा की, वह हीन न होने पाई। भगवद्भक्तों से छल छोड़ निरंतर प्रेमभाव करते; आनन्द से हाथ जोड़े, आज्ञा में एक चरण से खड़े रहते थे; और श्रीवृन्दावन वास कुंज क्रीड़ा दरशन में अति प्रीति थी; श्रीराधावल्लभलाल को नित्य प्रति लाड़ लड़ाते थे, प्रेम किया करते; और, सब धर्मों का सार नवधा भक्ति, तथा प्रधान प्रेमा भक्ति रूपी बड़ा भारी निधि हृदय रूपी गृहमें सदा संचित करते, परम प्रेममें मग्न हो जड़ सरीखे हो जाते थे। आप श्रीहरिदास जी के शिष्य थे॥

---

(२२१) श्रीहरिदास जी।

(७३३) मूल। छप्पै (८४३-७३३=११०)

हरीदास भक्तनि हित धनि जननी एक जन्यौ॥ अमित महागुन गोप्य सार वित सोई जानै। देखत कौ तुलाधार दूर आसै उनमानै॥ देय दामामौ पैज विदित वृन्दावन पायौ। राधावल्लभ भजन प्रगट परताप दिखायौ॥ परम धरम साधन सुदृढ़,

कलिजुग कामधेनु में गन्यौ। "हरीदास" भक्त-
नि हित, धनि जननी एकै जान्यौ ॥ १५६ ॥
(२१४-१५६=५८)

"दमामौ" = नगारा = डंका।

वार्तिक तिलक।

श्रीहरिदास जी की माता धन्य हैं कि जिनने भगवत् भक्तों का हितकार करने के लिये एक अद्वितीय पुत्र उत्पन्न किया। प्रभुके अमित महागुन गुप्त और भगवत चरित्रों का सारांश जाननेवाले हुए। जाति के तुलाधार (बनिये) तो थे ही, इस्से शास्त्रों की और सज्जनों की गम्भीर आशय देखके अनुमान से तोल लेते थे। वृन्दावन प्राप्ति होनेका अपना पैज (प्रण), दमामा डंका बजाकर लेलिया, इस्से श्रीराधावल्लभ जी के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप दिखा दिया। भगवतभक्ति साधन में अति सुदृढ़ कलियुग में कामधेनु की समान गिनेगये ॥ "हरीदास कुल बनिक में। प्रेमभक्ति की खान। पुर काशी ढिग रहतही, वृन्दाबन तज प्रान।"

"श्रीहरिदास जी" नाम के कई महात्मा श्रीभक्तमाल जी में वर्णित हैं।

(७३४) टीका। कवित्त (८४३-७३४ = १०९)

हरीदास वनिक, सो कासी ढिग वास जाकौ, ताकौ यह पन तन त्यागौं ब्रजभूमहीं। नयौ ज्वर नाडी छीन, छोडि गए बैद तीन, बोल्यौ यों प्रवीन "वृन्दावन रस झूमहीं" ॥ बेटी चारि संतनिकौ दई "अंगीकार करौ, धरौ डोली मांझ मोको ध्यान दृग घूमही"। चले सावधान राधावल्लभकौ गान करै,

करै अचिरज लोग परी गाँव धूमहीं ॥ ५७९ ॥ (६२९ –५७९ = ५१)

वार्तिक तिलक।

श्रीहरिदास जी बनिये काशी जी के समीप में बसते बड़े संतसेवी भक्त थे; आपका प्रण था कि "मैं वृन्दावन ही में शरीर छोडूं"। कालज्वर होनेसे नाड़ी छूटगई; दो तीन वैद भी छोड़के चलेगये।

इन परम प्रवीण ने कहा कि "मेरा मन वृन्दावन के प्रेम रस से झूम रहा है"। चार बेटियां थीं, सज्जनों को देकर, प्रार्थना की कि "इनको अंगीकार कीजिये, और मुझे डोली में धर वृन्दावन को ले चलिये, मेरे नेत्र वहीं ध्यानसे घूमते हैं।(दो०)" बनप्रमोदके फिरत हैं,मम आँखिन जे कुंज। हरि प्रसाद मैं फिरब कब? तेइ कुंजन सुख पुंज ॥१॥

नाड़ी छूटगई तौ भी सावधानता से श्रीराधावल्लभ जी का नाम गान करते चले; ग्राम में धूम पड़गई; लोग आश्चर्य्य करने लगे कि "यह वृन्दावन कैसे पहुँच सक्ता है?"

(७३९) टीका। कवित्त (८४३–७३९ = १०८)

आवतही मग मांझ छूटिगयौ तन, पन सांचौ कियौ श्याम, वन प्रगट दिखायौ है। आय दरसन कियौ, इष्ट गुरु प्रेम भरि नेम पर्‍यौ पूरौ, जाय चीरघाट न्हायौ है ॥ पाछें आए लोग, सोग करत भरत नैन वैन सब कही, कही "ताही दिन आयौ है"। भक्तिकौ प्रभाव यामे भाव और आनौ

जिनि, बिन हरि कृपा यह कैसें जात पायौ है ॥ ५८० ॥
(६२९–५७९ = ५०)

वार्तिक तिलक ।

आप आते थे, बीचही में शरीर छूटगया ।

प्रभु ने प्रण सच्चा कर सबको प्रतीत कराने के लिये वैसा ही दिव्य दूसरा शरीर दिया उसीसे वृन्दावन में आकर श्रीराधावल्लभ जी के और अपने गुरु गोसांई सुन्दरदास जी के, सप्रेम दरसन करके, चीरघाट स्नान कर, नेम पूरा किया । पीछे लेआनेवाले लोग नेत्रों में शोकजल भरे वृन्दावन में आकर कहनेलगे कि " अमुक दिन मार्ग में हरिदास जी का शरीर छूटगया, यहां नहीं पहुँचे । "

सुनके सुन्दरदासादि कहने लगे कि " उसी दिन तो आकर श्रीराधावल्लभ जी का हरिदास ने दरसन किआहै"

" चीरघाट न्हावत दिख्यौ, वृन्दावन नर नारि ।
कहौं सुयश सो ताहिकर, करहु हर्ष दुख टारि । "

यह सुन सब लोगों को बड़ाही हर्ष हुआ । भक्ति का प्रभाव ऐसाही है । प्रभु अपने भक्तों का प्रण अवश्य पूर्ण करते हैं । इसमें कोई और भाव कुतर्क का न लावै कि " वह प्रेत होकर आये होंगे । " वह प्रभुका दिया दिव्य ही शरीर था; विना हरि की कृपा ऐसा नहीं होता ॥

(२३० । २३१) श्रीगोपालभक्त । श्रीविष्णुदास ।

(७३६) मूल । छप्पै (८४३–७३६ = १०७)

भक्ति भार जूडे जुगल, धर्म धुरंधर जगबिदित ॥

"बांवोली" "गोपाल" गुननि गंभीर गुनारट। दच्छिन दिसि बिष्णुदास गांव "काशीर" भजन भट॥ भक्तनि सों यह भाय भजै गुरुगोबिंद जैसे। तिलक दाम आधीन सुवर संतनि प्रति तैसें॥ अच्युत कुल पन एकरस निबह्यौ ज्यौं श्री मुख गदित। भक्ति भार जूटै जुगल, धर्म धुरंधर जग बिदित॥ १५७॥ (२१४-१५७=५७)

वार्तिक तिलक।

ये युगल भक्त एक गुरु के शिष्य कर्म वचन मन से मिलके भक्तिरूपी भारको उठानेवाले भागवतधर्म-धुरंधर जगत में विख्यात हुये।

(१) काशी जी के समीप "बाबुलिआ" ग्राम में बसनेवाले "श्रीगोपालभक्त जी" दिव्य गुणों से भरे हुये बड़े गम्भीर भगवद्गुणों को रटा करते थे।

(२) दूसरे दक्षिणदिशि "काशीर" ग्राम के वासी "श्रीविष्णुदास जी" भगवद्भजन में बड़े सुभट हुये।

दोनों महानुभावों का हरिभक्तों में यह भाव था कि जैसा श्रीनाभा जी स्वामी ने कहा है "भक्त भक्ति भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक" ऐसाही गुरु गोविन्द के समान जानके संतसेवा करतेथे; और जैसा श्रेष्ठ संतों को मानते थे वैसाही कंठी तिलक मात्र धारणकरनेवालोंके भी आधीन रहते थे। अच्युत कुल का प्रेमपण दोनों भक्तों का, जैसा

भगवान ने श्रीमुख से कहा है कि "मेरे भक्तको मुझसे अधिक माने", इसी प्रकार एक रस निबह गया ॥

(७३७) टीका। कवित्त (८४३–७३७ = १०६)

रहे गुरु भाई दोऊ, भाई साधु सेवा हिये, ऐसे सुखदाई, नई रीति लै चलाइयै। जायँ जा महोछे मै बुछाए हुलसाए अंग संग गाडी सामा सो भंडारी दै मिलाइयै ॥ याको तातपर्य्य संत घटती न सही जात, बात वे न जानै, सुख मानै मन भाइयै । बड़े गुरु सिद्ध जग महिमा प्रसिद्ध, बोले बिनै कर जोरि सोई कहिकै सुनाइयै ॥ ५८० ॥ (६२९–५८० = ४९)

वार्तिक तिलक।

दोनों गुरु बन्धुओं के हृदय में संत सेवाकी बड़ी प्रीति थी; सज्जन ऐसे सुखदाता थे कि दोनोंने मिलके एक नवीन उत्तम रीति चलाई। जहां संत सेवा महोत्सव में बुलाये जाते, वहां अति आनन्द पूर्वक घरसे घृत आटा आदिक सामग्री गाड़ीमें भर ले जाके चुपचाप भंडारी कोठारी को दे, उनकी सामग्री में मिलवा देते थे। इसका तात्पर्य्य यह कि जिसमें कहीं सामग्री घटने से सज्जनों की निन्दा न हो। इस बात को उत्सव-करनेवाले नहीं जानते थे। अब सामग्री पूर्ण हो जाय तब सुख मानते थे।

दोनों गुरुभाइयों के श्रीगुरु स्वामी जगत में प्रसिद्ध महिमायुक्त सिद्ध थे; उनसे दोनों हाथ जोड़ आप दोनोंने विनय सुनाये, कि–

(७३८) टीका । कवित्त (८४३–७३८ = १०५)

चाहत महोछौ कियौ हुलसत हियौ नित, लियौ सुनि बोले " करौ वेगि दै तियारियै " । चहूंदिशि डार्‌यौ नीर, कर्‌यौ न्यौतौ ऐसे धीर, आवैं बहु भीर संत, ठौरनि संवारियै ॥ आए हरिप्यारे चारौ खूंटतें निहारे नैन, जाय पगुधारे सीस बिनैलै, उचारियै । भोजन कराय दिनपांच लगि छाय रहे पट पहिराय सुख दियौ अति भारियै ॥ ५८१ ॥ (६२९–५८१ = ४८)

" तियारियै " = تیاری तैयारी = बनाव, जुटाव ।

वार्त्तिक तिलक ।

" हे नाथ ! संत महोत्सव करने के लिये हृदय में नित्य हुलास होता है " । सुनकर स्वामी जी ने कहा कि " अच्छा है, शीघ्र जुटाव बनाव करो । संतोंका नेवता हम यहांही से कियेदेते हैं " ।

ऐसा कह जल लेकर चारों दिशाओं में डालदिया । ऐसे धीर समर्थ थे कि सब संतोंके यहां नेवता पहुंचगया । आपने आज्ञा दी कि " संतोंकी बड़ी भीड़ आवेगी रहनेके लिये छाया ठौर बनाओ " । ऐसाही किया । चारो खूंटसे हरि प्यारे संत आ विराजे; दोनों भाइयों ने नेत्रोंसे दरसन प्रणाम कर, श्रीगुरु चरणों में शीस नवाके विनय सुनाया कि " महाराज ! संत तो बहुत आए, सामग्री इतनी कहां है ? " श्रीगुरु ने आज्ञा की कि " जितना मनमाने उतना दो, घटेगा नहीं, देनेहारे प्रभु समर्थ हैं " । आज्ञा सुन, सुखी हो, भोजन

कराके, पांच दिन तक सत्कार किये, फिर संतों को वस्त्रादिक पहिनाके बड़ा भारी सुख दिया।

(७३९) टीका। कवित्त (८४३–७३९ = १०४)

आज्ञा गुरु दई "भोर आवौ फिरि आसपास, महा सुख- रासि 'नामदेव जू' निहारियै। उज्जल वसन तन एक ले प्रसन्न मन, चले जात बेगि सीस पायनिपै धारियै॥ वेई दें बताय 'श्रीकबीर' अति धीर साधु, चेले दोऊ भाई परदक्षिना विचारिये। प्रथम निरखि "नाम" हरखि लपटि पग लगि रहे छोड़त न बोले सुनौ धारियै ॥ ५८२॥ (६२९–५८२ = ४७)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगुरुदेव जी ने दोनों शिष्यों को आज्ञा दी कि "बड़े प्रभात इस संतशालाकी प्रदक्षिणा करना; उज्जल वस्त्र धारण किये अकेले प्रसन्न मन चले जाते हुए महासुखराशि श्रीनामदेव जी का दरशन तुमको होगा, शीघ्रही चरणों में सीस रख प्रणाम करना, फिर श्रीनामदेव जी ही परम धीर साधु श्रीकबीर जी का दरसन करादेंगे"।

आज्ञासुन दोनों भाई परिक्रमा को चले। पहिले श्री नामदेव जी का दरसन पा हर्षित हो चरणों में लिपट गये, छोड़ते न थे, तब श्रीनामदेव जी ने कहा कि "अब चरण छोड़के हमारा वचन सुनो"।

(७४०) टीका। कवित्त (८४३–७४० = १०३)

साधु "अपराध जहाँ होत तहां आवत न, होय सनमान

सब संत तौहीं आइयै। देखि प्रीति रीति हम निपट प्रसन्न भए," लये उर लाय "जावौ श्री कबीर पाइयै" ॥ आगे जो निहारैं भक्तराज दृग धारैं चली बोले हँसि आप "कोऊ मिल्यौ सुखदाइयै?"। कह्यौ "हां जू," मान दई भई कृपा पूरन यों, सेवाकौ प्रताप कहौ कहां लगि गाइयै ॥ ५८३ ॥
(६२९–५८३ = ४६)

वार्तिक तिलक।

"सुनो, जहां साधुओं का अपराध होता है वहां हम नहीं आते, और जहां सब संतों का सनमान होता है तहां ही हम आते हैं; तुम्हारी प्रीत रीति देख हम प्रसन्न हुये," ऐसा कह दोनों को हृदय में लगा आज्ञा दी कि "जाओ आगे श्रीकबीर जी को पाओगे।"

दोनों भक्त चलके देखैं तो भक्तराज श्रीकबीर जी चले आते हैं, चरणों में पड़ गये, नेत्रों से जल की धारा चलने लगी। श्रीकबीर जी ने हँसके पूछा कि "कोई और सुखदाई संत अर्थात् नामदेवजी तुमको मिले हैं?" भक्तों ने उत्तर दिया कि "हां महाराज मिले"। उसी प्रकार श्री कबीर जी ने भी दोनों को कृपा से मान दिया।

इस प्रकार श्रीगुरु और संतों की पूर्ण कृपा पा, भगवत् प्राप्ति के अधिकारी हुये।

कहिये; संत सेवा का प्रताप कैसे कोई कह सक्ता है?॥

दो०—"जिनि जिनि भक्तनिप्रीति की, ताके बस भए आनि।
सैन होइ नृप टहल किय, नामा(नामदेव) छाई छानि॥१॥

जगत विदित पीपा, धना, अरु रैदास, कबीर।
महा धीर, दृढ़ एक रस, भरे भक्ति गम्भीर ॥ २ ॥"

(७४१) मूल। छप्पै (८४३–७४१ = १०२)

कील्ह कृपा कीरति बिशद, परम पारषद सिष प्रगट ॥ आसकरन[1] रिषिराज, रूप[2], भगवान[3], भक्तगुर। चतुरदास[4] जग अभै छाप, छीतर[5] जु चतुर वर ॥ लाखैं[6] अद्भुत, रायमल[7] खेम मनसा क्रम वाचा। रसिक रायमल, गौर देवा[1] दामोदर[2] हरिरँग राचा ॥ सबै सुमंगल दास दृढ़ धर्म धुरंधर भजन भट। कील्ह कृपा कीरति बिसद परम पारषद सिष प्रगट ॥ १५८ ॥ (२१४–१५८ = ५६)

वार्त्तिक तिलक।

श्रीगुरु कील्हदेव जी की कृपा से सब शिष्य श्रीसीताराम जी के परम पारषद उज्ज्वल कीर्तिवाले प्रगट हुये।

(१) श्रीआसकरन जी राजर्षि।

(२।३) श्रीरूपदासजी, श्रीभगवानदासजी परम गुरुभक्त।

(३) श्रीचतुरदास जी ने जगत में अभै छाप पाया।

(४।५) श्रीछीतर जी अतिशय चतुर; श्रीलाखै जी बड़े अद्भुत।

(६) श्रीरायमल जी मन वचन कर्म से क्षेम (मंगल) युक्त।

(७।८।९।१०) श्रीरसिकरायमल जी, श्रीगौरदास जी, श्रीदेवादास जी, श्रीदामोदर जी, श्रीहरि के प्रेम रंग में रंग भये।

ये सब परम मंगलरूप श्रीरामदासत्व में दृढ़, धर्म धुरंधर, श्रीसीताराम भजन के सुभट हुये ॥

(२३२) श्रीनाथभट्ट जी ।

(७४२) मूल । छप्पै ८४३–७४२=१०१)

रसरास उपासक भक्तराज, "नाथभट्ट" निर्मल वयन ॥ आगम निगम पुरान सार शास्त्रनि जु विचार्यौ । ज्यों पारो दै पुटहिं सबनि कौ सार उधार्यौ ॥ श्रीरूप सनातन जीव भट्ट नारायन भाख्यौ । सो सर्वस उर सांचि जतन करि नीके राख्यौ ॥ फनी वंश गोपाल सुवरागा अनुगाकौ अयन । रसरास उपासक भक्तराज नाथभट्ट निर्मल वयन ॥ १५९ ॥ (२१४–१५९=५५)

वार्त्तिक तिलक ।

रास (शृंगार) रसके उपासक भक्तराज श्रीनाथभट्ट जी निर्मल वचन बोलने वाले थे । आगम और निगम पुराण सत शास्त्रों को विचार के सबों का सारांश निकाल के जैसे पारा में औषधियों का पुट देकर सिद्ध रसायन बना लेते हैं ऐसे ही आपने रसायन कर लिया । जो श्री रूप सनातन जी ने तथा श्रीनारायणभट्ट जी ने प्रेम भक्ति प्रतिपादन कथन किया था, सो सर्वस्व भले प्रकार यत्न से अपने हृदय में संचित कर रक्खा । फणी वंश में उत्पन्न

ऊंचेगांव वाले के पुत्र गोपालदास जी के पुत्र नाथभट्ट जी रागानुऽगा भक्ति के स्थान ही हुये ॥

शृङ्गार रस को "रसराशि" इस लिये कहा कि इसमें पांचो रसों की राशि होती है अर्थात् इस रस के उपासक में सब रसों की बातें इकट्ठी ही पाई जाती हैं ॥

(२३३) श्रीकरमैती जी।

(७४१) मूल। छप्पै (८४३-७४३=१००)

कठिन काल कलिजुग में, "करमैती" निहकलंक रही ॥ नस्वर पति रति त्यागि, कृष्ण पद सों रति जोरी । सबै जगत की फांसि तरकि तिनुका ज्यों तोरी ॥ निर्मल कुल कांथड्या धन्नि परसा जिहिं जाई । बिदित वृन्दावन वास संत मुख करत बड़ाई ॥ संसार स्वाद सुख वांत करि, फेर नहीं तिन तन चही। कठिन काल कलिजुग में करमैती निहकलंक रही ॥ १६० ॥ (२१४-१६०=५४)

वार्त्तिक तिलक।

कलियुग ऐसे कठिन काल में जन्म लेकर श्रीकरमैती जी कलियुग के अघों से बचीं और निष्कलंक ही रहीं। संसारी मिथ्या पति की रति को त्यागकर, श्रीकृष्ण चरणों में दृढ़ रति की। "बसी श्याम मूरति हियें, बाढ़यो प्रेम

अपार ।" जगत के सब संबंधियों की प्रीति रूपी फांसी तर्ककर, तृण समान तोड़ डाली । निर्मल "कांधड़्या" कुल धन्य है और पिता "परसुराम जी" धन्य हैं कि जिनके ऐसी हरिभक्त पुत्री उत्पन्न हुई । विख्यात वृन्दावनवास किया, जिसकी बड़ाई सब संत अपने मुख से करते थे, संसार स्वाद विषय सुख को वमन करके, फिर उन सुखों की ओर देखा भी नहीं ॥

(७४४) टीका । कबित्त (८४३–७४४ = ९९)

शेषावति नृप के पुरोहित की बेटी जानौ, वास हौ खंडेला करमैती जो बखानियै । बस्यौ उर श्याम, अभिराम कोटि काम हूं तें, भूले धाम काम सेवा मानसी पिछानियै ॥ बीत जात जाम तन वाम अनुकूल भयौ, फूलि फूलि अंग गति मति छबि सानियै । आयौ पति गौनौ लैन, भायौ पितु मातु हिये, लिये चित चाव पट आभरन आनियै ॥ ५८४ ॥ (६२९–५८४ = ४५)

वार्तिक तिलक ।

शेषावति नगर के राजा के पुरोहित खडेला के रहने वाले श्रीपरसुराम जी की कन्या श्रीकरमैती जी को जानिये ।

कोटानि काम से अधिक अभिराम श्याम सुन्दर ने आपके हृदय में निवास किया; इससे गृह के कामों को भूल, केवल मानसी पूजा करने लगीं । सेवा करते करते पहर के पहर बीत जाते थे; यद्यपि देह तो कुटिल स्त्री

जातिका था, तथापि प्रभु कृपा से अति अनुकूल होगया। अंभ अंग से प्रफुल्लित हो आपने अपनी मति की गति को श्रीकृष्ण छबि में मिला दिया।

जिस समय पति गवनालेने आया उस समय माता पिता को बहुत प्रसन्नता हुई; बड़े आनन्द से वस्त्र भूषण आदि सब साज प्रस्तुत किये॥

(७४९) टीका। कवित्त (८४३-७४९ = ९८)

पर्यौ सोच भारी कहा कीजिये बिचारी, "हाड़ चाम सों सँवारी देह रति के न काम की। तातें देवौ त्यागि मन! सोवै जानि, जाग अरे, मिटै उर दाग एक साची प्रीति स्याम की॥ लाज कौन काज? जौपै चाहै ब्रजराज सुत, बड़ोई अकाज, जौपै करै सुधि धाम की। जानी भोर गौनौ होत, सानी अनुराग रंग, संग एक वही, चली भीजी मति वाम की॥ ५८५॥ (६२९-५८५ = ४४)

"दाग" = داغ = चिन्ह, कलंकित चिन्ह।

वार्तिक तिलक।

श्रीकरमैती जी को बड़ा भारी सोच पड़ा विचार करने लगीं कि "अब क्या करूं? इस पुरुष की देह हाड़ मास चाम से बनाई, प्रीति करने के योग्य नहीं; इससे इसे त्याग देना चाहिये। हे मन! तू सोवै मत, मोह नींद से जाग के सच्ची प्रीति एक श्रीश्याम की कर, जिससे हृदय की मलीनता मिटजाय; जो श्रीबृजराजनन्दसुत को चाहै तो लाज मत कर; जो घर की सुधि करेगा तो बड़ा ही अकाज होगा।"

मन को ऐसे समझाकर जिस दिन के प्रभात में गौना होना था उसी रात्रि में अनुराग रंग से पगी, मति को प्रेम में भिगाकर, अकेले एक प्रभु ही का ध्यान साथ ले, आप चल दीं ॥

(७४६) टीका । कवित्त (८४२–७४६ = ९७)

आधी निसि निकसी यों बसी हिये मूरति सो, पूरति सनेह तन सुधि बिसराई है । भोर भये सोर पर्यो, पर्यो पितु मातु सोच, कर्यौ लै जतन ठौर ठौर ढूंढ़ि आई है ॥ चारों ओर दौरे नर, आये ढिग ढुरि जानि, ऊंट के करंक मध्य देह जा दुराई है । जग दुरगंध कोऊ ऐसी बुरी लागी, जामें वह दुरगंध सो सुगंध सी सुहाई है ॥ ५८० ॥ (६२९–५८६ = ४३)

वार्तिक तिलक ।

आधी रात को निकलकर चल दीं । वही साँवली मूरति हृदय में बसी, स्नेह को पूर्ण करती और उसीने शरीर की सुधि भुला दी । प्रभात होने पर बड़ा कुलाहल पड़ा; माता पिता अत्यन्त सोचकर यत्न से ठौर २ ढूंढ़ आये, और बहुत से लोगों को चारों ओर ढूंढ़नेको दौड़ाए ।

श्रीकरमैती जी ने जाना कि ढूंढ़नेवाले लोग समीप आगये, तब, एक मरे ऊंट के करंक को सिआरों ने खोल डाला था उसी में घुसकर छिप गईं । देखिये, आपको जगत् के पापों की दुर्गंधि इतनी दुःसह लगी कि आपने उस्के सामने उस करंक की दुर्गंधि को सुगंध के सम मान लिया ॥

(७४७) टीका । कवित्त (८४३-७४७=९६)

बीते दिन तीन वा करंक ही मै संक नहीं, वंक प्रीति रीति यह कैसें करि गाइयै । आयौ कोउ संग, ताही संग गंग तीर आई, तहां सो अन्हाई दै भूषन वन आइयै ॥ ढूढ़त परसराम पिता मधुपुरी आये, पते लै बताये जाय मथुरा मिलाइयै । सघन विपिन ब्रह्मकुंड पर, बर एक, चढि करि, देखी, भूमि अँसुवा भिंजाइयै ॥ ५८७ ॥ (६२९-५८७=४२)

वार्तिक तिलक

उसी खाकर (करंक) ही में बैठे तीन दिन बीत गये मनमें कुछ भी शंका नहीं । यह बांकी प्रीति की रीति किस प्रकार गान हो सकती है ?

चौथे दिन कोई श्रीगंगा को जाताथा उसी के साथ आकर गंगा में स्नानकर, अपने सब भूषण दान दे, वृन्दावनमें चली आईं । हरि स्मरण में मग्न रहती थीं ।

पीछे, आपके पिता परशुराम जी ढूंढ़ते २ मथुराजी में आये; और मथुरिओं से पता पाकर उनको साथ में ले सघन वन ब्रह्मकुंड के समीप एक वट के वृक्षपर चढ़, श्री करमेती जी को देख उनने आंसुओं से भूमिको भिगा दिया ॥

(७४८) टीका । कवित्त (८४३-७४८=१९५)

उतरि कै आयरोय पाय लपटाय गयो, " कटी मेरी नाक जग मुख न दिखाइयै । चलौ गृह वास करौ लोक उपहास मिटै, सासु घर जावौ मत, सेवा चितलाइयै ॥ कोऊ

सिंह व्याघ्र अजू वपुकों विनास करै, त्रास मेरै होत, फिरि मृतक जिवाइये " । बोली कही " सांच बिन भक्ति तन ऐसो जानो जौपै जियौ चाहौ, करौ प्रीति, जस गाइये " ॥ ५८८ ॥ (६२९–५८८ = ४१)

वार्तिक तिलक ।

परशुराम वृक्ष से उतरके रोते हुये । श्रीकरमैती जी के पास पहुँच चरणों में लपटकर कहने लगे कि " बेटी ! तुम्हारे चले आनेसे संसार में मेरी नाक कटगई; मैं लज्जा से किसी को मुख नहीं दिखाता । तुम चलो अपने घर में निवास करो, लोक की उपहांस मिटै, ससुराल मत जाओ, घर ही में चित्त लगा के भजन पूजा करो, यहां बनमें कोई सिंह व्याघ्र खाजाय, तो मुझे बड़ा दुःख होगा, तुम्हारी माता और मैं मृतक प्राय हूं, सो फिर चलकर दोनों को जिलाओ । "

आपने उत्तर दिया कि " सत्य कहते हो, भक्ति के विना शरीर को मृतक ही जानो, जो जिया चाहो, तो श्री-प्रभु के पद में प्रीति कर, श्रीनाम यश को गान करो " ॥

(८८) " राम है मातु, पिता, सुत, बन्धु, औ संगि, सखा, गुरु, स्वामी, सनेही । राम की सौं है, भरोसो है राम को, रामरँगी रुचि, राचो न केही ॥ जीवत राम, मुए पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही । सोई जियै जगमैं तुलसी, न त डोलत और मुए धरि देही ॥ १ ॥ "

(७४९) टीका । कवित्त (८४३-७४९ =९४)

कही तुम कटी नाक, कटै जौपै होय कहूं, नाक एक भक्ति, नाक लोक में न पाइयै । बरस पचास लगि विषै ही में वास कियौ, तऊ न उदास भये चबेकों चबाइयै ॥ देखे सब भोग मैं न देखे, एक देखे श्याम, तातें ताजि काम तन सेवा मैं लगाइयै । एततेंज्यौं प्रात होत, ऐसे तम जात भयौ, दयौ लै सरूप प्रभु, गयौ, हिये आइयै ॥ ५८९ ॥ (६२९ -५८९ = ४०)

वार्तिक तिलक ।

और, "जो तुमने कहा कि मेरी नाक कटगई सो बिना विचार का वचन है क्योंकि कटै तो तब जो कहीं नाक हो भी तो ? नाक तो एक भगवद्भक्ति ही है, सो भक्ति के बिना इस लोक में और स्वर्गलोक में जितने जीव हैं वे सब नकटे ही हैं । विचार करो कि पचास वर्ष तक तुमने विषय भोग किया, तथापि उस्से उदास न हुये, चबाए हुए ही को चबाते हौ, अर्थात् जैसे पशु एकबेर घास को चबाके लील जाता है उसीको फिर पांगुर करके चबाता है, ऐसे ही संसारी लोग कार्य्य एक बेर कर फिर उसी को अनुमोदन चिन्तवन करते हैं । देखो मैंने सब भोगों की ओर देखते भी नहीं देखा, एक श्यामही की ओर देखा । इस्से तुम भी सब काम भोग को तज तन मन को हरि भजन में लगाओ।

"बहु बिधि बचन कठोर कहि, सबै निरादर कीनि । वृन्दा बन को छाड़िये, यह आओ मन भूलि जिनि ॥" ऐसा श्री

करमैती जी का उपदेश सुन, जैसे प्रभात होते रात्रि चली जाती है ऐसे ही परशुराम जी का तम अज्ञान चलागया; श्रीकरमैती जी ने एक शालिग्राम स्वरूप दिया, सो लेकर घर को चलेगये, श्रीकरमैती जी के वचन हृदय में धारण किये रहे।

(७५०) टीका। कवित्त (८४३-७५०=९३)

आयें निसि घर, हरि सेवा पधराय, चाय मन को लगाय, वही टहल सुहाई है। कहूं जात आवत न भावत मिलाप कहूं, आप नृप पूछे द्विज कहां ? सुधि आई है॥ बोल्यौ कोऊ जन धाम स्याम संग पागे, सुनि अति अनुरागे, वेगि खबर मंगाई है। कही तुम जाय "ईश इहांई असीस करौं," कही भूप आयौ, हिये चाह उपजाई है॥ ५९० ॥ (६२९-५९० = ३९)

वार्तिक तिलक।

परशुराम जी रात्रि में अपने घर आये, और श्रीहरि सेवा स्वरूप पधराके उतसाह से मन को लगाकर पूजा टहल भजन करने लगे, किसी का मिलाप अच्छा नहीं लगता, इस्से कहीं भी नहीं जाते आते थे।

एक दिन राजा ने स्मृति कर लोगों से पूछा कि "बहुत दिन हुये ब्राह्मण परशुराम जी यहां नहीं आये कहां हैं ?" किसी ने कहा कि "श्री वृन्दावन से आ, अब अपने घर ही में प्रेम से पगे भगवद्भजन करते हैं।" सुनके राजा को अनुराग हुआ; शीघ्रही मनुष्य को भेजकर कहवाया कि "हम दरशन किया चाहते हैं।" श्रीपरशुराम जी ने

उत्तर कहला भेजा कि "मैं राजाजी को यहां ही से आशिर्वाद देता हूं, मनुष्य तन पाकर जिस राजा की सेवा करनी चाहिये उसी की कर रहाहूं।" उसने आकर कहा। सुन कर राजा को दरशनों की प्रीति चाह उत्पन्न हुई॥

"जो मन से आसा गई, योगी गुरु जगदास॥
नृप गुरु निश्चय जानियै, जब मन में नृप आस॥१॥
(चौ०) "जिनके नयन सन्त नहिं देखा।
लोचन मोर पंख के लेखा॥२॥"
(दो०)" सन्त दरस को जाइये, तजि आलस अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे पड़ै, उतने यज्ञ समान॥३॥"

(७५१) टीका। कबित्त (८४३-७५१=९२)

देखी नृप प्रीति रीति, पूछी, सब बात कही, नैन अश्रुपात, "वह रँगी स्याम रंग मै"। वरजत आयौ भूप "जायके लिवाय ल्याऊँ पाऊँ जौपै भाग मेरे" बाढ़ि चाह अंग मै॥ कालिंदी के तीर ठाढ़ी नीर दृग, भूप लखी, रूप कछु औरै, कहा कहै वे उमंग मै। कियौ मने लाख बेर ऐरै अभिलाष राजा कीनी कुटी, आए देस, भीजें सो प्रसंग मै॥५९१॥ (६२९-५९१=३८)

वार्त्तिक तिलक।

आकर परशुराम जी की प्रीति देख, राजाने भक्ति होने का हेतु पूछा। आप श्रीकरमैती जी का सब वृत्तात सुना के नेत्रों में आंसू भर कहने लगे कि "वह तो श्यामसुन्दर के रंगमें रँग गई।" राजा ने कहा कि "मैं जाता हूं लिवा

लाऊंगा।" आपने कि कहा "महाराज! आप मत जाइये, वह नहीं आवैगी।"

तथापि राजा ने उत्तर दिया कि मैं जाता हूं जो दरशन पाऊं और लिवा लाऊं तो मेरा बड़ा भाग्य उदय हो"। प्रीति चाह के अधिकता से श्रीवृन्दावन में आकर देखें तो श्रीयमुना जी के तीरमें खड़ी नेत्रों में प्रेम जल भरके प्रभु का चिन्तवन कर रही हैं। राजा ने प्रणाम कर रूप अवलोकन किया तो कुछ और ही अकथनीय अनुराग के उमंग की प्रभा चमक रही है। राजा ने चलने की प्रार्थना की; आपने अभियुक्त उत्तर देदिया। तब यहां ही कुटी बनाने को विनय किया। आपने तब भी बारंबार निषेध किया।

तथापि राजा ने ब्रह्मकुण्ड के पास एक कुटी बनवा ही दी। सो अबतक उपस्थित है। फिर राजा श्रीकरमैती जी के दरशन प्रेम से भीज देशमें आकर भक्तिमें तत्पर हुआ॥

(२३४) श्रीखड्गसेन जी।

(७५२) मूल। छप्पै (८४३–७५२ = ९१)

गोबिंदचंद गुनग्रथन को "खगमेन" बानी बिसद॥ गोपी ग्वाल पितु मातु नाम निरनै कियौ भारी। दान केलि दीपक प्रचुर अति बुद्धि उचारी॥ सखा सखी गोपाल, काल लीला में बितर्यो। कायथकुल उद्धार भक्ति दृढ़ अनतन चितयौ॥ "गौतमी तंत्र" उर ध्यान धरि, तन त्यागयौ

मंडल सरद ॥ गोविन्दचंद गुन ग्रथन कौ "स्वर्ग-सेन" वानी विषद ॥ (२१-१६१=५३)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीगोविन्दचन्द्र जी के गुणोंको ग्रंथित करने के लिये "खर्गसेन (खड्गसेन)" जी की वानी बड़ीही उज्वल थी । गोपिका और ग्वालों के माता पिताओं के नाम ग्रंथों से ढूंढ़ २ कर एक ग्रंथ बनाया, और दान केलि लीला, दीपमालिका चरित्र, बड़ी बुद्धिमानी से रचना किया। श्रीगोपालजी और उनके सखा सखियों की लीला वर्णन ही में अपना सम्पूर्ण काल बिताया। जातिके कायस्थ, अपने कुलका उद्धार करने वाले, दृढ़ भक्तिको छोड़ आपने किसी ओर देखा भी नहीं।

"गौतमी तंत्र" की रीति से ध्यान धर, शरद रास मंडल में, देह को तज नित्य रास मंडल में प्राप्त हुये ॥

दोहा—"खरगसेन के प्रेम की, बात कही नहिं जात ।
लिखत ललित लीला करत, गएप्रान तजिगात"

(७५३) टीका । कवित्त (८४३-७५३=९०)

ग्वालियर बास, सदा रास कौ समाज करैं, सरद उजारी, अति रंग चढ्यौ भारी है । भावकी बढ़ानि दृगरूप की चढ़ानि तत् थेईकी रढ़नि जोरी सुन्दर निहारी है ॥ खेलत में जाय मिले त्यागि तन भावना सो झेलत अपार सुख, रीझि देहवारी है । प्रेमकी सचाई ताकी रीति लै दिखाई, भई भावकनि सरसाई, बात लागी प्यारी है ॥ ५९२ ॥ (६२९=५९२=३७)

वार्तिक तिलक ।

कहते हैं कि ये श्रीहितहरिवंश जी के संप्रदायभुक्त थे। आप ग्वालियर में बसते सदा रासका समाज करते थे। एक समय शरद ऊंजारी में रास होता था उसमें प्रेमरंग बहुत बढ़गया नृत्य में परस्पर भाव की बढ़न नेत्रों में रूप की चढ़न युक्त "ताताथेई" आदि गान करने वाली श्यामा श्यामकी सुन्दर जोड़ी को निरख भावना से झिलके, अपार सुख को प्राप्त हो, रीझके देहको नेवेछावर कर, तज, नित्य केलि में जामिले।

दोहा—"चढ़िकै काम तुरंग पर, चलिबो पावक माहिं।
प्रेम पंथ अतिशय कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥१॥

यह प्रेमकी सचाई की रीति दिखाई दी, जिसको देख सुन के भाविकों के मनमें अति सरस्ता हुई। यह बात मुझे बड़ी ही प्यारी लगी।

(२३५) श्रीगंगग्वाल जी।

(७५४) मूल। छप्पै (८४३-७५४=८९)

सखा श्यमा मन भावतौ, "गंगग्वाल" गंभीर मति॥ स्यामाजूकी सखी नाम आगम बिधि पायौ। ग्वाल गाय ब्रजगांव पृथक नीके करि गायौ॥ कृष्ण केलि सुखसिंधु अघट उर अंतर धरई। ता रसमै नित मगन असद अलाप न करई॥ ब्रजवास आस, "ब्रजनाथ" * गुरुभक्त, चरण रज अन-नि गति। सखा श्यामा मन भावतौ, "गंगग्वाल"

गंभीर मति ॥ १६२ ॥ (२१४-१६२=५२)

वार्त्तिक तिलक ।

" पियप्यारी को जस कह्यौ, रागरङ्ग सों गाइ । "

श्रीश्यामसुन्दर जी के मनभावते सखा श्रीगंगाग्वाल जी बड़ी गंभीर बुद्धिवाले थे । श्रीराधिका जी की सखियोंके नाम आगम ग्रंथों से खोजके, और गायों के नाम, ब्रजग्रामों के नाम, पृथक २ आपने भले प्रकार गान किये । श्रीकृष्णचन्द्र जी की केलि सुखसिंधु एकरस हृदय के अन्तर धारण कर उसीके रसमें सदा निमग्न रहते असत वार्ता कभी नहीं करते थे। श्रीब्रज में बसके, ब्रजराज ही की आसा रखते थे; और अपने गुरु श्रीब्रजनाथ * जी की चरण रजके अनन्य गति भक्त थे । (दो०) " काय कसो, कि बन बसो, हँसो, रहो गहि मौन । तुलसी मन जीते बिना, मिटै न, है दुख जौन " ॥ १ ॥ " प्रेम नीर गंभीर अति, कोउ न पावत थाह । मीन लीनरस रसिक जो, सोई पावत ताह " ॥ २ ॥

* सम्भवतः, श्रीवल्लभाचार्य्य जी के प्रपौत्र " श्रीब्रजनाथ जी "

(७९९) टीका । कवित्त (८४३-७९९=८८)

पृथ्वीपति आयो वृन्दावन, मन चाह भई सारंग सुनावै कोउ जोरावरी ल्याये हैं । वल्लभहू संग, सुर भरतही, छायौ रंग, अतिही रिझायो, दृग अंसुवा बहाये हैं ॥ ठाढ़ो कर जोरि बिनै करी, पै न धरी हिये, जियै ब्रजभूमि ही, सो वचन सुनाये हैं॥ केद करि साथ लिये दिल्ली, ते छुटाय दिये "हरीदास तूँवर"

ने आये प्रान पाये है ॥ ५९४ ॥ (६२९—५९३ = ३६)

"जोर्आवरी" = زورآوری = ज़बरदस्ती = बलात् = बलसे ॥

"कैद" = قید = बन्दी ।

वार्तिक तिलक ।

एक समय अवनीश (बादशाह सम्भवतः अकबर) वृन्दाबनमें आया, मध्यान के समय उसके मनमें चाह हुई कि "यहां कोई अच्छा गानेवाला हो तो मुझे सारंग राग सुनावे"। लोग इन्हींको अति प्रशंसनीय प्रवीण जान, बल से लिवा लाये। एक वल्लभनामगुणीगायक भी साथ में आया; मिलके दोनों के स्वर भरतेही, अतिशय रंग छागया सबके नेत्रों से प्रेमके आंसू बहने लगे।

अति प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड़ भूपाल ने विनय किया कि "मेरे साथ चलिये"। आपने उत्तर दिया कि "मेरा जीवन ब्रजभूमि ही है इसको नहीं छोड़ सक्ता।"

निदान, यवनराज बलात्कार पकड़ साथमें दिल्ली ले ही गया। वहां से राजा "तूँवर हरिदास" (पाटम नगर के राजा हरिदास तोदरजी राजपूत) ने उससे प्रार्थना कर, आपको छुड़वा दिया। ब्रज में आए, प्रियतम के दरशन पाए। "मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे।"

जान पड़ता है कि ये श्रीवल्लभाचार्य्य जी के सम्प्रदाय में थे।

---

(२३६) श्रीसोती जी।

(७५६) मूल। छप्पै (८४३—७५६ = ८७)

सोती श्लाध्य संतति सभा द्वुतिय दिवाकर जानि

यों ॥ परम भक्ति परताप, धर्मध्वज नेजा धारी। सीतापतिको सुजस वदन सोभित अति भारी ॥ जानकी जीवन चरण शरण थाती थिर पाई। नर हरि गुरु प्रसाद पूत पोते चलि आई ॥ "राम उपासक" छाप दृढ़ औरन कछु उर आनियो। सोती श्लाघ्य संतनी सभा द्वितिय दिवाकर जानियो ॥ १६३ ॥ (२१४-१६३=५१)

"नेज़ा" = نیزہ = दण्ड।

वार्तिक तिलक।

संतों की सभा में परम प्रशंसनीय श्री "सोती" जी को दूसरे सूर्य जानना चाहिये; जैसे भानु का प्रताप होता है ऐसा ही आप का परम भक्ति रूपी प्रताप था। और धर्म की ध्वजा के दण्ड को धारण करने वालों में उत्तम वीर थे। श्रीसीतापति जी तथा श्रीसरयू अयोध्या जी का बड़े भारी सुयश कथन से आपका वदन अत्यन्त शोभित था। श्रीजानकीजीवन जी के चरणों की शरणगति रूप महानिधि आपके हृदय में स्थिर रक्खी हुई थी।

श्रीगुरु "स्वामी नरहरिदास" जी की कृपा प्रसाद से वह महानिधि पुत्र पौत्रों तक एक रस चली आई। "श्रीराम उपासक सोती" आपकी दृढ़ छाप थी। श्रीसीताराम जी के नाम रूप लीला धाम प्रीति छोड़ मनमें और कुछ भी नहीं चिन्तवन करते थे ॥

दोहा-राम सनेही, राम गति, राम चरण-रति जाहि ।
तुलसी फल जग जन्म को, दियो बिधाता ताहि ॥ १ ॥

(२३७) श्रीलालदास जी ।

(७५७) मूल । छप्पै (८४३-७५७=८६)

जीवत जस, पुनि परमपद, लालदास दोनों लही ॥ हृदै हरिगुण खानि, सदा सतसँग अनुरागी। पद्मपत्र ज्यों रह्यौ लोभा की लहर न लागी ॥ विष्णु रात सम रीति "बघेरै" त्यों तन त्याज्यो। भक्त बराती वृन्द मध्य दूलह ज्यों राज्यौं ॥ खरी भक्ति "हरिषांपुरे" गुरु प्रताप गाढी गही । जीवत जस पुनि परमपद लालदास दोनों लही ॥ १६४ ॥
(२१४-१६४=५०)

वार्तिक तिलक ।

जीते में सुयश और शरीर त्यागने पर परमपद श्रीहरि कृपा से श्रीलालदास जी को दोनों दिव्य सम्पत्ति प्राप्तहुये । आपका हृदय श्रीहरि गुणों की खानि था। और सदा सतसंग के अनुरागी थे और जैसे जल में कमल का पत्र रहता है परंतु उसमें जल नहीं स्पर्श होता ऐसेही आप जगतमें थे पर जगत के दोष लोभादिकों की लहर आपको नहीं लगी । जिस रीति से परीक्षितजी ने श्रीमद्भागवत सुनते समाज में तनु त्यागा, इसी प्रकार "बँघेरे" (बँबेरे) ग्राम में आप ने भागवत सुनते कथा पूरी होते ही शरीर त्याग दिया ।

जैसे बरातियों के वृन्द में दूलह सोहता है, ऐसेही आप भगवतभक्तों के मध्य में शोभा पाते थे। आप ने, अपने गुरुस्थान "हरिषांपुर" में रहके, श्रीगुरुप्रताप से उत्तम भक्ति अति दृढ़ता से ग्रहण किया। इस प्रकार से यश तथा मोक्ष दोनों के आप भागी हुये।

(२३८) श्रीमाधव ग्वाल।

(७५८) मूल। छप्पै (८४३–७५८=८५)

भक्तनि हित भगवतरची, देही "माधौ ग्वाल" की॥ निसिदिन यहै बिचार दास जिहि बिधि सुख पावैं। तिलक दाम सों प्रीति हृदै अति हरि जन भावैं॥ परमारथ सों काज हिये स्वारथ नहिं जानै। दसधा मत्त मराल सदा लीला गुण गानै॥ आरत हरिगुण सील सम प्रीति रीति प्रति पाल की। भक्तनि हित भगवत रची देही "माधौ ग्वाल" की॥ १६५॥ (२१४ – १६५ = ४९)

वार्तिक तिलक।

श्रीभगवद्भक्तों के हित करने ही के लिये "श्रीमाधव ग्वाल जी" के देह को श्रीब्रह्मा जी ने रचा। जिस प्रकार भगवतदासों को सुख प्राप्त हो, उसी बिचार में दिनरात लगे रहे थे। तिलकदाम (ऊर्द्ध्वपुण्ड्र और कण्ठीमाला) से बड़ी ही प्रीति थी, और उनके धारण करनेवाले हरिजन

आपके हृदय में अति प्यारे लगते थे । केवल परमार्थ से प्रयोजन रखते, स्वार्थ जानतेही नहीं थे । प्रेमाभक्ति से मत्त हंसके समान सदा हरि लीला गुणगान रूपी मुक्ता चुनते थे (दो०) यश तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु । मुकताहल गुणगण चुनइ, राम बसहु मन तासु ॥ और हरिगुण सुनने के लिये सदा आर्त रहते थे । बड़ेही शील समता पूर्वक सबसे, और मुख्यतः हरिभक्तों के साथ, निर्मल अन्तःकरण से प्रीति रीति प्रतिपाल करते थे ॥ (चौ०) " राम भक्त प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥ "

(२३९) श्रीप्रयागदास जी ।

(७५९) मूल । छप्पै (८४३–७५९ = ८४)

श्री अगर सुगुरु परतापतें पूरी परी प्रयाग की ॥
मानस वाचक काय राम चरणनि चित दीनो ॥
भक्तनि सों अति प्रेम भावना करि सिर लीनो ॥
रास मध्य निर्जान देह दुति दसा दिखाई । "आड़ौ बलियौं " अंक महोछौ पूरी पाई ॥ " क्यारे " कलस औली ध्वजा विदुष श्लाघा भाग की । श्रीअगर सुगुरु परतापतें पूरी परी प्रयागकी ॥ १६६ ॥ (२१४–१६६ = ४८)

वार्तिक तिलक ।

श्रीसीताराम कृपा से स्वामी श्री६अग्रदास जी को गुरु पाके, उनके प्रताप से " श्रीप्रयागदासजी " की भगवत्

भागवत में भक्ति हुई और सब प्रकार से पूरी पड़ी। मन वचन कर्म से श्रीसीताराम जी में तत्पर हो युगल चरणों में चित्त लगाया। और भगवत भक्तों से अति प्रेम भावना कर, उनको आते देख माथे से लेते, अर्थात् चरणोंमें मस्तक रख आगेसे लेकर सेवा किया करते थे।

एक समय "आरा बलिया" ग्राममें संत सेवा की उत्तम ध्वजा गाड़ने का, और "क्यारे ग्राम" में भगवत् मंदिर में कलश चढ़ाने का, महोत्सव था; दोनों ठिकानें से आपको नवता आया। एकही दिन दोनों उत्सव में एक शरीर से कैसे जासकैं और एक उत्सव में जाने से एक का अपमान होता इससे विचार कर दोनों ग्राम के मध्यमें बैठकर दोनोंउत्सव करनेवालों से विनय किया कि "इसी ठिकाने से दोनों ओर पंगति बैठा दो और दोनों ओर से पूरी परस्ते चले आओ दोनों ओर से पूरी प्रसाद दो; मैं दोनों उत्सवों का प्रसाद पाऊंगा"। लोगोंने कहा कि "कोसभर का अन्तर दोनों ग्रामों में है, इतनी पंगति के लिये पदार्थ नहींपूजेगा" आपने आज्ञा दी कि "श्रीगुरु प्रतापसे सब पूरा पड़ जायगा।"

लोगोंने ऐसा ही किया। आपने दोनों महोत्सव की पूरी प्रसाद पाया, और सबोंही के लिये सब पदार्थ पूरा पूरा होगया।

अन्तमें रासलीला होती थी उसमें प्रभुकी प्रत्यक्ष छबि आपको दीखपड़ी; उसी समय देह त्याग कर भगवत धामको प्राप्त हुये। आपके भाग्य की बड़ाई प्रसंसा बिदुख सज्ज-

नों ने किया और किसीने लिखा है कि श्रीप्रयागदास जी ने दो देह धारण कर दोनों उत्सवों में जाके ध्वजा औ कलश चढ़ाया । जैसा हो सो विज्ञ लोग जानें; दोनों होसकता है ॥

" खेलै राम रंगीलौ कागरी आज रंगीली फागरी । चन्द्रकला विमलादि रंगीली प्यारी रंगीली नागरी ॥ कनक महल भजि कुंज प्रति २ उमगि रह्यौ अनुरागरी । युगल प्रिया अधिकार सदाकै अग्र स्वामि पद लागरी ॥ "

(२४०) श्रीप्रेमनिधि जी ।

(७६०) मूल । छप्पै (८४३–७६० = ८३)

प्रगट अमित गुन " प्रेमनिधि, " धन्य विप्र जिहि नाम धऱ्यौ ॥ सुन्दर सील सुभाव, मधुर बानी, मंगलकर । भक्तनिकों सुख दैन फल्यौ बहुधा दसधातरु ॥ सदन बसत निर्वेद, सारभुक, जगत असंगी । सदाचार उद्धार नेम हरिदास प्रसंगी ॥ दया दृष्टि वसि " आगरैं " कथा लोग पावन कऱ्यौ । प्रगट अमित गुन " प्रेमनिधि " धन्य विप्र जेहिं नाम धऱ्यौ ॥ १६७ ॥ (२१४–१६७ = ४७)

वार्तिक तिलक ।

श्री "प्रेमनिधि" जी में अपार प्रेम गुण प्रगट था, वास्तव में आप प्रेम के निधि ही थे। इस्से जिस ब्राह्मण ने आपका यह नाम रक्खा था सो धन्य है । प्रेमके साथी और भी

गुण आपमें थे, आप सुन्दर शीलवान स्वभावयुक्त, और मंगल करनेवाली मधुर वाणी आपकी परमानन्ददा थी। भगवत भक्तों को सुख देनेवाले प्रेम लक्षण भक्ति रूपी बहुत फलोंसे युक्त मानो कल्प वृक्ष थे। घर रहकर भी वैराग्ययुक्त, सारग्राही, जगत् से असंग थे।

जाति के ब्राह्मण सदाचार नियम में तत्पर, अति उदार, हरिदासोंके संग में निरत भजन में रत हुये। जीवोंके ऊपर उदार दृष्टि कर, (समीप ही वृन्दावन वास छोड़) आगरे में रहकर वहां के लोगों को कथा सुनाके पावन कर भवपार उतार दिया॥ दोहा "परहित रत, सियराम पद, भक्ति, सदा सत्संग। सहज विराग, उदार जे; का बन ? का गृहरंग ? ॥ १ ॥
" जे जन रूखे विषय, पुनि, चिकने रामसनेह । ते बसि नित सियराम पद, कानन रहहिं कि गेह " ॥ २ ॥

(७६१) टीका । कवित्त (८४३ –७६१ = ८२)

प्रेमनिधि नाम, करैं सेवा अभिराम स्याम, आगरो महर, निसिसेस जल ल्याइयै । बरखा सुरितु, जित तित अति कीच भई, भई चित चिंता " कैसे अपरस आइयै ॥ जौ पै अंधकार ही मै चलौं तौ बिगार होत," चले यों बिचारि "नीच छुवै न सुहाइयै" ॥ निकसत द्वार जब देख्यौ सुकुँवार एक हाथ में मसाल " याके पाछे चले जाइयै " ॥ ५९५॥
(६२९–५९४ = ३५)

वार्तिक तिलक

श्रीप्रेमनिधि नाम के भक्त श्रीश्यामसुन्दर की पूजा

सेवा अति अभिराम करते थे। आगरे नगर में रहते, नित्य कुछ रात्रि रहते ही श्रीप्रभु के लिये श्रीयमुना जल लाया करते थे।

एक दिवस वर्षा के ऋतु में मार्ग में जहां तहां कीच होगई। रात्रि थोड़ी शेष थी, तथापि अंधकार बड़ा था; आपके मनमें चिन्ता हुई कि "किस प्रकार से अछूत जल लाऊं? प्रकाश होनेपर जाऊं तो लोगों से छू जायगा" जो अंधेरे में जाऊं तो भी ठीक नहीं।" फिर मन में ठीक किया कि "अन्धकार में चलना ही अच्छा है, नीच तो नहीं छूयेंगे"। ऐसा निश्चय कर, घर से निकलते ही देखते क्या हैं कि 'एक सुकुमार हाथ में प्रकाश लिये आगे जा रहा है'।

(दो०) "प्रेम-कि-निधि-प्रति प्रेमनिधि, भर्यौ प्रेम उर जाल।
सोई मूरति धारिकै, प्रकट भयो तिहि काल" ॥१॥
दीप हाथ लिय ढीठ अस, यमुना तट जो चोर।
कै माखन? कै 'निधि' हरै? हरै कि सखि चित मोर?२

मोहित हो आपने विचारा कि "राम कृपा से इसी के पीछे पीछे चला चलूं"॥ "जैसै धन धाम भाम श्याम जू के लागे काम, होत अभिराम, दुखग्राम नाशै मन की। जैसे रतिकाई-औ-अनन्यताई-बात मुख शोभित है क्रियामान-ज्ञानवान-जन की ॥ &c."

(७४७) टीका। कवित्त (८४३-७४७=९६)

जानी यहै बात पहुंचाए कहूं जात यह अवही बिलात भले चैन कोऊ घरी है। जमुना लौं आयो, अंचरस जा

लगायो मन, तन अन्हवायो, मति वाही रूप हरी है॥ घट भरि धऱ्यौ सीस, पट वह आय गयौ, आय गयौ घर, नहीं देखी, कहा करी है। लगी चटपटी अटपटी न समझि परै, भटभटी भई नई, नैन नीर झरी है॥५९६॥ (६२९–५९५=३४)

वार्त्तिक तिलक।

आप यह समझे कि "यह किसी को पहुंचाकर लौटा जाता है, जहां इसका घर होगा वहां तो चलाही जावेगा भला जय क्षण उजाला है तब ही तक सुख सही।" वह मनमोहन प्रकाशयुत (मशलची) श्रीयमुना जी तक आया; आपने मनमें आश्चर्यमान, तन से स्नान किया परंतु आपकी बुद्धिको उस सुकुमार के रूपने हर लिया। स्नान कर, जल भर, घड़ा माथेपर धर, चले ही, कि झट वही आकर आगे २ चला; अपने घर आप आ पहुँचे कि वह अन्तर्धान हो गया, उसको न देखा! न जाने कहां गया? कुछ पता न चला।

अब तो मन और नेत्रों में उसके देखने की चटपटी पड़ी, यह अटपटी बात समझ में नहीं आती, नई भटभटी भई कि यह कहां गया? नेत्र विचारे जलकी झड़ी करने लगे॥

(चौ०) "बरसै मघा झकोरि झकोरी।
मुर दुउ नैन चुवैं जनु ओरी!"

(पद) "नयन लगि जायँ जो राजिव नैन। भटकत हैं दरसन अभिलाषे, खटकत हैं दिन रैन। &c. &c."

(दो०) " पुतरी कारी आंख की, रूप श्याम को मान।
वा सों सब जग देखिये, वा बिन अन्धो मान १॥"

श्रीप्रेमनिधि के सोच विचार तथा अपार प्रेम किस से वर्णन हो सकते हैं?

(दो०) जब लगि भक्ति सकामता, तब लगि कच्ची सेव।
कह कवीर वे क्यों मिलैं, निहकामी निज देव॥

(७६३) टीका। कवित्त (८४३–७६३=८०)

कथा ऐसी कहै जामैं गहै मन भाव भरै, करैं कृपा दृष्टि दुष्टजन दुख पायो है। जायकै सिखायो बादशाह उरदाह भयौ, कही तिया भली कौ समूह घर छायो है॥ आए चोब-दार कहै चलो एही बार वार, झारी प्रभुआगे धर्यौ चाहै सोर लायो है। चलै तब संग गए पूछै नृप रंग कहा? तियनि प्रसंग करौ? कहिकै सुनायो है॥ ५९७ ॥(६२९–५९६ = ३३)

वार्तिक तिलक।

श्रीप्रेमनिधि जी श्रीभागवत की कथा इस प्रकार कहते थे कि जिसको मन एकाग्र हो ग्रहण कर प्रेमभाव से भर जाता था। स्वयं पाठक समझ सकते हैं कि श्रीप्रेमनिधि जी की कथन कैसी विलक्षण तथा प्रभावयुक्त होती होगी। जीवोंपर आपकी ऐसी कृपा दृष्टि देख दुष्टोंने स्वभावतः दुख पाकर जाके नृपति (बादशाह) से झूठी निन्दा की कि " उसके घरमें नगरभर के अच्छे अच्छे घरोंकी सब स्त्रियां आके बैठी रहती हैं।

(कबित्त) " आजु कलिकाल ऐसो आयो है

कराल अति, राखै भगवान टेक, तौ तो वृन्द जीजियै। बोलिये न चालिये जु, बैठि, पिंड पालिये जु, आंखि कान दोउ मूंदि, मौनव्रत लीजिये॥ देखी अनदेखी जानि, सुनी अनसुनी मानि, माला गहि पानि, हानि लाभ चित न दीजिये। कीजियै न रोष जो पै कहै कोऊ बीस सीस, लीजै धरि सीस, जगदीस साखि किजियै॥ १॥"

यवनराज ने सुनते ही क्रोधाग्नि से जलके लोगों को भेजा कि "उसको बुला लाओ" आकर उनने कहा कि "इसी क्षण चलो"। उस समय आप जलसे झारी भरके प्रभुके पीनेको आगे रखना चाहते थे, पर उन लोगोंका कठोर हांक सुन उनके साथ चल ही दिये।

गये; यवनराज पूछने लगा "तुम्हारा क्या रंग है? हम सुनते हैं कि नगरभर की अच्छी २ नारियों का प्रसंग रखते हो" उसका कहना सुन आपने उत्तर दिया।

(७६४) टीका। कबित्त (८४३-७६४ = ७९)

कान्ह भगवान ही की बात सो बखानि कहीं; आनि बैठें नारी नर लागी कथा प्यारी है। काहू कों बिडारे, झिरकारे, नैकु टारे, बिषै दृष्टि कै निहारे, ताको लागै दोष भारी है॥" "कही तुम भली तेरी गली हो के लोग मोसों आयकै जताई वह रीति कछु न्यारी है"। बोल्यौ "याहि राखौ सब करौ निरधार नीके," चले चोबदार लेकै, रोके प्रभु धारी है॥ ५९८॥ (६२९-५९७ = ३२)

वार्तिक तिलक ।

"खोटी कहनेवालों का मुँह कौन रोके, परन्तु मैं तो श्रीकृष्ण भगवान की ही कथा बखान करता हूं; सुनने के लिये नारी पुरुष सब आकर बैठते हैं क्योंकि सब को प्यारी लगती है; उसमें कोई किसी को अपमान करके उठा दे, या विषय दृष्टि से देखै, तो उसको बड़ा भारी दोष होता है, इससे मैं किसी को निषेध नहीं करता"।

यवनराज ने कहा कि "तुमने तो अच्छी बात कही परंतु तुम्हारे समीप ही के लोगों ने आकर हमसे जताया है कि "उसकी रीति कुछ और ही प्रकार की है"। ऐसा कह, सेवकों को आज्ञा दी कि "ले जाओ, इसको नज़र बन्द (बन्धन में पहरे में) रक्खो, इसका निर्णय हो जायगा, तब छोड़ेंगे"। आज्ञा सुन चोबदारों ने लजाकर बन्धन में डाल रक्खा।

श्रीप्रेमनिधि जी प्रभु से प्रार्थना करने लगे।

प्रभुने कृपाकर विनय को श्रवण में धारण किया॥

(७६९) टीका। कबित्त (८४३-७६९=७८)

सोयौ बादशाह निसि, आयकै सुपन दियौ, कियौ वा को इष्टभेव, कही "प्यास लागी है?" "पीवौ जल," कही "आबखाने लै बखाने" तब अति ही रिसाने "को पिवावै, कोऊ रागी है!" फेर मारीलात अरे सुनी नहीं बात मेरी; आप फुरमावौ जोई प्यावै बड़ भागी है॥ सोतौ तै लै कैद कर्‍यो सुनि अरबर्‍यौ डर्‍यौ भर्‍यौ हिये भाव